UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180061

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83·1/S22A Accession No. G·H·2411

Author संगर, सत्यप्रकाश।

Title अवगुण्ठन। 1956

This book should be returned on or before the date last marked below.

अवगुण्ठन

लेखक की अन्य पुस्तकें

१. कली मुसकराई (उपन्यास)
२. घर की आन (उपन्यास)
३. अफ्रीका का आदमी (कहानी-संग्रह)
४. नया मार्ग (कहानी-संग्रह)
५. कितना ऊँचा कितना नीचा (कहानी-संग्रह)
६. लम्बे दिन जलती रातें (कहानी-संग्रह)

अवगुण्ठन

(कहानी-संग्रह)

सत्यप्रकाश संगर

विजय प्रकाशन
भोपाल : अकोला

प्रथम संस्करण, १९५२
द्वितीय आवृत्ति, १९५६

लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : दो रुपये

प्रकाशक :
विजय प्रकाशन, भोपाल
तथा १६५, जथार पेठ, अकोला

मुख्य वितरक :
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
दिल्ली, इलाहाबाद, बम्बई।

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली।

श्री वी० विश्वनाथन को
समर्पित

परिचय

संगर जी की कहानियों में यह बात स्पष्ट और सतह पर ही दिखाई दे जाती है कि वे व्यवसायी कलाकार का श्रमसाध्य परिश्रम नहीं हैं। वे भाषा और विचारों में हल्की-फुलकी हैं। परन्तु कला-व्यवसाय की रूढ़ियों से उन्मुक्त होकर भी उनमें स्वाभाविकता की गहराई मौजूद है। अनायास मर्म को छू पाने की चुभन भी उनमें है।

लेखक ने इन कहानियों को अपने कलात्मक सन्तोष के लिए लिखा है। परन्तु व्यक्ति की भावना और कलात्मक अनुभूति व्यक्ति की ही अपनी चीज़ बनकर नहीं रह सकती। व्यक्ति स्वयं भी व्यक्तिगत रूप से केवल अपना ही नहीं बन सकता। वह समाज का होता है। उसकी अनुभूतियों और अभिव्यक्तियों पर समाज का प्रभाव और नियन्त्रण होता है। परस्पर आदान-प्रदान के इस ढंग से व्यक्ति की अनुभूतियाँ, अभिव्यक्तियाँ और उसका कलात्मक सन्तोष भी समाज की ही चीज बन जाते हैं। इसी कारण संगर जी की ये कहानियाँ भी प्रकाशित हो जाने पर केवल उनकी व्यक्तिगत मार्मिक अनुभूति न रहकर समाज के लिए रसानुभूति का साधन बन गई हैं।

इन कहानियों की विशेषता इनकी सादगी की शक्ति है, जिसका एक उदाहरण पहली कहानी 'राही' में प्राकृतिक वर्णन के प्रसंगों में मिलता है—"हिमालय की बर्फ़ीली चोटियों के पिघलते हुए आँसुओं को दामन में सँभाले एक पहाड़ी नाला तीव्र गति से भागा जा रहा था, जैसे चोरी का माल उड़ाये कोई डाकू।" नाले की डाकू से इस उपमा से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक जिस दृश्य का वर्णन कर रहा है,

वह उसका कितना अधिक पहचाना हुआ है। वह केवल काव्यमय प्रकृति-वर्णन नहीं है। इन कहानियों का स्तर भी नित्य जीवन के अनुभवों का और इनका बोलचाल की भाषा में भी रोजमर्रा का मुहावरा मौजूद है। इसी कारण ये सुलभ और हलकी हैं। 'आँसू' कहानी में बर्तन माँजते हुए रामू की अपनी बचपन की प्रेयसी को अपनी कमाई से सन्तुष्ट कर पाने की कल्पना साधनहीन व्यक्ति की उमंगों का और फिर कहानी के अन्त में उसका घर लौटने योग्य ही न रह जाना साधनहीन समाज के जीवन में मौजूद विद्रूप का बड़ा तीखा चित्रण है।

पाठक के व्याकरण और अलंकार-ज्ञान की परीक्षा इन कहानियों की भाषा नहीं लेती। हिन्दी में उर्दू के मुहावरे का पुट आ जाने से हिन्दी पर गैर भाषा का प्रभुत्व नहीं जम जाता, बल्कि हिन्दी की व्यापकता और सामर्थ्य बढ़ जाती है। यह बात इन कहानियों की भाषा से स्पष्ट हो जाती है। इसके विपरीत जहाँ भी लेखक ने हिन्दी को केवल संस्कृत के अधीन कर देने की चेष्टा की है, वहाँ खटक भी अनुभव हुए बिना नहीं रहती।

ये कहानियाँ स्वाभाविक सरलता से अनायास लिखी गई जान पड़ती हैं। इसलिए इनमें अनायास बोलचाल की भाषा ही अधिक फबती हुई जान पड़ती हैं। उससे लेखक की कलात्मकता के प्रति पर्याप्त आश्वासन पाठक को मिलता है, इसलिए इनका परिचय पाठकों को कराने में भी सन्तोष होता है।

लखनऊ,
१९५२

—यशपाल

विषय-सूची

१.	राही	११
२.	आँसू	२३
३.	शहर से शहर तक	४१
४.	पराजय	४६
५.	अवगुण्ठन	६३
६.	कोलाहल	८७
७.	बुलबुले	१०५
८.	आवाजें	११७

राही

हिमालय की गगन-चुम्बी दीवारें शेरपुर को अपने दामन में सँभाले खड़ी थीं और शेरपुर की घाटी नैसर्गिक सौन्दर्य का जीता-जागता सुन्दर चित्र थी। पहाड़ों के बीच गेहूँ के अगणित खेतों में बँटा हुआ एक विशाल मैदान पर फैलाये खड़ा था। खेतों की बेढंगी-सी क्यारियाँ हाथों की असंख्य रेखाओं की भाँति फैली हुई थी। इन खेतों को मिलाती हुई पगडण्डियों पर चलते हुए नर-नारी पहाड़ की चोटी से ऐसे मालूम देते थे, जैसे रेंगते हुए कीड़े।

खेतों को छूती हुई नागिन के समान बल खाती हुई एक नीली श्रेणी थी, जिसमें कहीं-कहीं श्वेत उभरे हुए चिह्न दीख पड़ते थे। यह पहाड़ों में बहती हुई रावी थी। यौवन के मद में चूर वह एक चंचल सुन्दरी के समान बल खाती हुई मस्त नृत्य में निरत थी। उसकी नस-नस में मस्ती भरी हुई थी—उसके अंग-अंग से यौवन फूट रहा था। उसके नाच की झंकार एक सुन्दर गीत बनकर शेरपुर की विस्तृत घाटी में छा गई थी और वह एक ही धुन से अपने ध्येय की ओर, अपने प्रियतम की ओर बढ़ी जा रही थी। अपने को उसमें मिलाने के लिए, अपने अस्तित्व को मिटा देने के लिए। वह दृढ़ निश्चय के साथ कितनी अपूर्व स्थिति से आगे बढ़ी जा रही थी। पिया-मिलन की मादकता ने उसे पागल बना रखा था। पहाड़ों को काटती और पत्थरों से उलझती वह

भागी जा रही थी और न जाने कब से। कितने घोर विप्लव और कितने व्यापक परिवर्तन हुए। उन्नति और अवनति की मुठभेड़ हुई। भिन्न-भिन्न सम्राटों ने साम्राज्यों के अंकुर बोये और उनसे उत्पन्न हुए वृक्षों को समय की प्रचण्ड वायु ने जड़ से उखाड़ फेंका। फिर नये अंकुर, नये वृक्ष और नये तूफ़ान। एक अनन्त व्यापार, एक अनवरत व्यवहार। लेकिन इस सबसे बेखबर, संसार की क्षुद्र वायु से अछूती वह बहती जा रही थी।

उसमें कितना जीवन और कितना प्रवाह था। एक प्रचण्ड गति से वह बह रही थी। परन्तु शेरपुर के निवासियों के लिए यह केवल एक नाला ही था। सदैव बहने वाला, उनके खेतों को सींचने वाला। उसकी प्रचण्डता उनके लिए एक जटिल समस्या बन जाती थी। उसको पार करने के लिए उनका अपना बनाया हुआ एक रस्से का पुल था। उसको पार करना एक बहुत ही कठिन काम था। थोड़ी सी चूक पार करने वालों को उसमें ढकेल देती और उनका शरीर चट्टानों से टकरा-कर चूर-चूर हो जाता।

और चट्टानें कितनी भयानक थीं! शताब्दियों से अपने स्थान पर गड़ी हुई वे अब भी एक अतीत युग की याद ताजी कर रही थीं, जब पत्थर के शस्त्र बनते, जिनसे जानवरों का शिकार और शत्रुओं का मुकाबला होता। वह था पत्थर का युग, जब सभ्यता रूपी रवि का उदय न हुआ था, जब एक पत्थर एक समय में एक ही मनुष्य का शिकार कर सकता था। अब है ऐटम-युग, जब सभ्यता का सूर्य उन्नति के शिखर पर पहुँच चुका है और ऐटम बम लाखों मनुष्यों के लिए मृत्यु का सन्देश ला सकता है। शताब्दियाँ बीत गई। पत्थर के शस्त्र एक अतीत काल की स्मृति बनकर रह गए। लेकिन उनकी चट्टान-माताएँ उसी स्थान पर गड़ी नदी के मार्ग को रोकने का असफल प्रयत्न कर रही थीं।

किन्तु घाटी के लोग, नदी की प्रचण्डता से बेखबर, वातावरण से अप्रभावित, जीवन व्यतीत कर रहे थे। शहर के कोलाहल से दूर और

प्राकृतिक सुन्दरता से अनभिज्ञ वे जीवन की लहर में बहे जा रहे थे, जैसे मन्दगति नदी के प्रवाह के साथ कोई काष्ठखण्ड। दूर तक फैली हुई निर्जीव घाटी में साहजी की दुकान पर ही जीवन के चिह्न नज़र आ रहे थे। दूर बिखरे हुए घरों से पहाड़ी लोग मैले, ऊँचे पाजामों, गन्दी पगड़ियों और फटे हुए कोटों में लिपटे, साहजी की दुकान पर इस प्रकार डरते-डरते सौदा माँगते, जैसे भिक्षा माँग रहे हों। उन निर्जीव लोगों में साहज ही एक सजीव मनुष्य दीख पड़ते थे। उनकी दुकान पन्सारी, बजाजी और बिसातखाने का एक संग्रह थी, जहाँ से उनकी सब माँगें पूरी होतीं।

उसका वश चलता तो सारा जीवन इसी घाटी में बिता देता। किन्तु जीवन में सभी काम मनुष्य की इच्छा के अनुसार नहीं होते। उसका पड़ाव वहाँ से आठ मील दूर था, जहाँ से मोटर में सवार हो उसे शहर लौटना था। वह थोड़ा-सा अवकाश पाकर प्रकृति का आनन्द लेने आया था। विवश हो लौट पड़ा। उसके सामने ऊँचे पहाड़ थे, जिनको काटती हुई एक पगडण्डी उसके पड़ाव को जाती थी। वह उस पगडण्डी के साथ-साथ लौट पड़ा। प्रेमी अपनी इच्छा के विरुद्ध अपनी प्रेमिका से दूर ढकेला जा रहा था। वह चलता रहा। पगडण्डी पहाड़ी खेतों में गायब हो गई, जहाँ किसानों ने हल चला रखे थे। सूर्य तेजी से अपना मार्ग समाप्त कर रहा था। उसके इर्द-गिर्द जीवन का कोई चिह्न दिखाई न देता था। जैसे परिस्थिति ने षड्यन्त्र करके उसे इस चक्कर में डाल दिया हो। वह उस एकाकीपन और निर्जनता से घबरा-सा गया। रास्ता भूलकर वह सीधा पहाड़ पर चलने लगा। काँटेदार झाड़ियों से उलझता, नुकीले पत्थरों से टकराता और सूखी घास पर फिसलता वह ऊपर चढ़ता गया। उसे आशा होती कि उस पहाड़ की चोटी पर पहुँचकर सीधी राह मिल जायगी। लेकिन वह पहाड़ी सिल-सिला समाप्त ही न होने आता। एक के बाद दूसरा, फिर तीसरा पहाड़ शुरू हो जाता था। वह बराबर चलता रहा। दूर से एक आवाज़ उसके

कान में पड़ी। कोई गा रहा था। वह उस आवाज़ की ओर बढ़ा। सामने ढलान थी। उतरना, सहज हो गया। हिमालय की बरफीली चोटियों के पिघले हुए आँसुओं को दामन में सँभाले एक पहाड़ी नाला तीव्र गति से भागा जा रहा था, जैसे चोरी का माल उड़ाये कोई डाकू। नाले के किनारे एक घड़ा पड़ा था। उसके पास विशाल चट्टान पर पीठ के बल लेटी हुई एक सुन्दरी कोई सुरीली धुन अलाप रही थी। वह वहीं रुक गया। वह कह रही थी—

"प्रियतम, मैं कब तक तुम्हारी राह देखती रहूँ ?
प्राकृतिक सौन्दर्य मुझे पागल बना रहा है।
पहाड़ों की चोटियाँ सफ़ेद बर्फ का चोला पहने खड़ी हैं ;
सूर्य की किरणें उनका आलिंगन कर रही हैं।
चीड़ों के वृक्ष नशे में झूम रहे हैं।
और मादकता से भरा 'चश्मा' नृत्य में मग्न है।
प्रियतम, मैं कब तक तुम्हारी राह देखती रहूँ ?"

न जाने क्यों उसके मुँह से एक आह निकल गई, जिसने सुन्दरी को चौंका दिया। परदेसी मुसाफिर को देखकर वह झिझकी, किन्तु शीघ्र सँभल गई और घड़ा सँभाले चश्मे के किनारे जा बैठी। उसकी दृष्टि उस रूपराशि से उलझ गई। कितना लावण्य था उसमें। गम्भीरता और सरलता से पूर्ण उस गुलाबी मुखड़े पर सुरमई आँखें और तनी हुई भौंहें उसका निर्माण करने वाले चित्रकार की निपुणता को पुकार-पुकार कर सराह रही थीं। प्रकृति की गोद में पली हुई, कपट और छल से रहित, उस रूपसी को समीप पाकर वह आनन्द से पुलकित हो उठा।

अकस्मात् एक धीमी-सी आवाज ने उसे चौंका दिया। वह पूछ रही थी—

"कहाँ से आये हो बटोही ?"

"शेरपुर से।"

"कहाँ जाओगे ?"

"छावनी।"

"इधर कैसे आ फँसे ?"

"राह भूलकर," वह बोला, "कँटीली झाड़ियों से उलझता, भयानक रास्तों में लुढ़कता, इधर आ निकला हूँ।"

वह स्तब्ध हो उसका मुँह ताकने लगी। क्या वह सचमुच रास्ता भूलकर रीछों और चीतों से भरे घने जंगलों और भयंकर पर्वतों में से घूमता आया था ? वह उन भयंकर रास्तों से अनभिज्ञ न थी। वह हैरान थी कि किस प्रकार एक परदेसी पथिक राह भूलकर संध्या समय उन जंगलों में घूमता रहा और दुर्गम पहाड़ों पर चढ़ता रहा। एक गलत क़दम, एक भूल उसे दूर नीचे पर्वत की गहरी घाटियों में ले जा सकती थी जहाँ शताब्दियों की भूखी चट्टानें पैने दाँत निकाले उसे निगल जाने को खड़ी थीं। वह काँप उठी। सहानुभूति का एक समुद्र उसके मन में हिलोरने लगा। कहीं वह उसकी सहायता कर सकती ! वह थकावट से चूर और भूख से व्याकुल हो रहा था, लेकिन सौंदर्य की सुरभित सुधा ने उसे सब कुछ भुला दिया। सुन्दरी ने उसके मुरझाये हुए मुख की ओर देखा। उसके हृदय की गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न किया। फिर न जाने उसे क्या सूझी। वह उठ बैठी और धीमे से बोली—

"पथिक, वह जो सामने घर दिखाई देता है·····तुम वहाँ सुस्ता लेना।" इतना कहकर वह एकदम आँखों से ओझल हो गई।

वह निराश हो, अपने भाग्य को कोसता आगे बढ़ा। ऐसी कठिन यात्रा में उस अप्सरा की भेंट ने उसे कितना सुख दिया था। अब एक स्वप्न की भाँति वह आँखों से ओझल हो गई। वह हाथ मलकर रह गया। यात्रा की थकावट और भूख की तेज़ी उसे और भी परेशान कर रही थी। उसने देखा, दूर पश्चिम में चीड़ के पेड़ों के पीछे सूर्य ने आकाश में आग लगा रखी थी। वह दिन-भर तपने के बाद अब भी डूबना न चाहता था। प्राकृतिक नियम के अनावश्यक बंधन ने उसे आग-बबूला कर दिया। स्वर्णमयी लाली पश्चिम क्षितिज के आकाश पर

आ गई। ऊँचे बरफीले पहाड़ों पर उसकी आभा जा पहुँची। सुनहरी किरणें बरफ को चूमने लगीं। बरफ का मुख लाल हो उठा, जैसे किसी रमणी के सुन्दर मुख पर लाज से सुर्खी के डोरे दौड़ जायँ। प्रकृति सौंदर्य की चरम सीमा पर जा पहुँची थी। किन्तु वह उसका उपभोग न कर सका। दिशाओं की निस्तब्धता को चीरता हुआ नदी का अनवरत कलरव अब भी उसके कान में गूँज पैदा कर रहा था, लेकिन वह उसके हृदय में गुदगुदी न पैदा कर सका। जीवन उसके लिए फीका और नीरस बन गया था।

सामने पहाड़ी चढ़ाई थी—सीधी और तीक्ष्ण। योगी के मार्ग की तरह कठिन। एक भी भूल उसके जीवन-दीप को बुझा सकती थी। जीवन भी क्या है, चौराहे पर रखा हुआ दीपक! थोड़ी चढ़ाई के बाद उसे साँस लेने के लिए रुकना पड़ता। उसने देखा, नीचे वादी में रावी अपने राग में मस्त थी। उसके किनारे सिर उठाये एक पहाड़ खड़ा था—तिरछा सा। उस पर झाड़ियाँ उगी थीं। बकरियाँ चर रही थी। पास ही, उसी पहाड़ी पर लड़के बैठे थे। उसे उन चरवाहों और उनकी बकरियों पर तरस आ गया। वहाँ से फिसलना कितना सहज था। नीचे पत्थरों और चट्टानों से टकराती हुई रावी बह रही थी। लेकिन न वे गेरे और न उनकी बकरियाँ। वह प्रकृति के इस चमत्कार पर विस्मित हो उठा, जो विशाल मैदानों, घने वनों, तंग घाटियों और बर्फीले पहाड़ों पर मनुष्य को अपने अनुसार बना लेती है। वह आगे बढ़ा। युवती के विचार ने उसे परेशान कर रखा था। उसे उस पर क्रोध आ रहा था, जो इस प्रकार धोखा देकर, एक झूठी आशा दिलाकर, भाग गई थी। उसने सोचा, 'पहाड़ी' लोगों से मित्रता कैसी? ऊपर पहाड़ पर एक मकान नज़र आ रहा था। मंजिल अभी दूर थी और दिन ढल रहा था। उसने हिम्मत बाँधी और पैर बढ़ाता हुआ उस मकान के पास जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसे ढाढ़स हुआ। शायद कहीं कुछ खाने को मिल सके। वह पैसे दे सकता था। ये लोग गरीब होते हैं और गरीबी

और लालच में कितनी गहरी छनती है ! उसने देखा, मकान का निचला कमरा बन्द पड़ा था और ऊपर की छत पर बत्ती जल रही थी। वह इस सुनसान जंगल में ऐसी मालूम दे रही थी, जैसे अँधेरी रात के बादल से घिरे हुए आकाश में केवल एक तारा चमकता हो। वह नीचे फ़रश पर बैठ गया और फिर वहीं लेट गया। भूख ने उसे निढाल कर दिया था।
"कौन ?" एक आवाज ने उसे पुकारा।

"पथिक," उसने लेटे-लेटे कहा।

"कहाँ से आये हो ?"

"शेरपुर से।"

"कहाँ जाओगे ?"

"छावनी।"

"इस समय ?" उस आवाज ने हैरानी से पूछा।

वह न समझ सका कि इसमें हैरानी की क्या बात है और इस समय शेरपुर से आने में क्या हर्ज है ? उसने सोचा, पहाड़ी लोग डरपोक होते है। लेकिन उसे अकस्मात् याद आया कि अभी यात्रा बाकी है और पेट खाली है। उसने बैठते हुए गृहस्वामी से पूछा कि इर्द-गिर्द कहीं खाने को कुछ मिल सकता है ? लेकिन उसकी 'ना' ने उसे निराशा के समुद्र में ढकेल दिया। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और आकाश घूमता हुआ नजर आने लगा। उसने सुना घर का मालिक किसी को सम्बोधन कर रहा था—

"लूसन की माँ ! मुझे गटालिया जाना है। एक आवश्यक काम से। जमीन का मामला है, शायद देर से लौटूँ। अथवा प्रातः ही आऊँ।" और इर्द-गिर्द के जंगल और पहाड़ों के सन्नाटे पर उस पहाड़ी जमींदार की आवाज जैसे छा गई।

उसकी यह आशा भी जाती रही। मंजिल अभी दूर थी। भूत की छाया की तरह रात सिर पर खड़ी थी। आज उसके लिए पराजय का दिन था। उस कठोरहृदया बालिका की रुखाई ने उसके हृदय पर गहरा

घाव कर दिया था। शायद उस घाव की तीक्ष्णता घट जाती, यदि जमींदार गटालिया जाने के बदले उसे कुछ खाने को दे देता। उसकी उपेक्षा ने उसके घावे को ताजा कर दिया।

उसी समय एक बुढ़िया उसके पास आकर बोली—

"बाबू ! लो रोटी खा लो और यह रही चाय। लूसन कहती है, वह इस समय नहीं खायेगी। इस पर आपकी मोहर लगी है।"

उसे संदेह हुआ कि वह स्वप्न देख रहा है—लूसन, चाय, रोटी, मोहर। उसकी समझ में कुछ न आया। यह कैसा गोरख-धंधा है। इतने में बुढ़िया फिर बोली—

"लूसन ! मैं पानी लाना भूल गई। ये लोग बिना हाथ धोये नहीं खाते। एक गिलास पानी लाओ—लालटेन भी लेती आना।"

और न जाने कहाँ से वही सुन्दरी उसके सामने आकर खड़ी हो गई। वही थी लूसन—वनदेवी—स्वर्ग की अप्सरा। चाय और रोटी को भूल वह मुग्ध हो उसकी ओर देखने लगा। वह बोली—"खाओ बटोही।"

वह कुछ न बोला। उसकी आँखें उसके मुख पर गड़ गई। उसने फिर कहा—

"कहाँ जाओगे इतनी रात गये ? यहीं लेट रहो, बापू सवेरे से पहले नहीं आयेगा।"

कितनी अभिलाषाएँ तड़प रही थीं इस प्रार्थना में ! कितनी आकांक्षाएँ सिसक रही थीं इस पुकार में ! वह मन मसोसकर रह गया। परदेसी मुसाफिर, मैदानों का रहनेवाला, पहाड़ों के व्यवहार से अनभिज्ञ, यहाँ के संसार से अनजान ! सामने तीन मील पर दूसरे पहाड़ पर प्रकाश टिमटिमा रहा था। यह थी उसकी मंजिल ! दयारों की ओट में चाँद आँख-मिचौनी खेल रहा था। जंगल सौरभ से महक रहा था और यहाँ थी लूसन, जिसमें चाँद का सौंदर्य और दयारों का सौरभ भरा था। वह सोचने लगा—लूसन और मंजिल।

उसी समय दूर से एक आवाज आई। लूसन के बाप की; जमींदार

की। वह गटालिया से लौट आया था। न जाने क्यों ! लूसन उसकी गरज सुनकर भागी। बुढ़िया भी न रुक सकी।

और जमींदार बटोही से कह रहा था—

"हाँ, वह सामने प्रकाश वाला पहाड़ ही तुम्हारा ध्येय है। सीधे सड़क से चले जाओ ! तीसरे मील पर बाई ओर को मुड़ जाना। जय-जय।"

आँसू

"अबे ओ रामू के बच्चे, सुनता नहीं ? बाबू को पानी दे," पांडत ने चिल्लाकर कहा।

रामू उठकर नल के पास गया। गिलास धोया, उसे पानी से भरा और बाबू के पास रख दिया। फिर बरतन माँजने में लग गया।

पंडित ने फिर शोर मचाया, "अबे थालियाँ क्यों लहीं लाता ?"

रामू मँजी हुई थालियाँ लेकर उठा और उन्हें नल पर धोकर पंडित के पास रख आया। परन्तु अभी माँजने को बरतनों का ढेर पड़ा था। फिर आकर अपनी जगह पर बैठ गया।

उसका गोरा रंग कालिख ने छिपा रखा था। चेहरे पर कालिख के दाग पड़े थे। कन्धों पर कमीज फटी हुई थी। जब काम की अधिकता के कारण उसकी नाक से पानी बहने लगता, तो वह कमीज के लटकते हुए टुकड़े से उसे पोंछ देता।

राख के ढेर पर बैठते हुए उसने जूठे बरतनों को एक ओर हटा दिया और उनमें कटोरियाँ छाँटने लगा, क्योंकि अब पंडित ने उनकी माँग की थी। वह आलुओं की जूठी सब्ज़ी को नाली में फेंक देता और उन कटोरियों को राख से मलता। उसके अपने गाँव में आलू बहुतायत से पैदा होते थे। उसकी अपनी भूमि थी, जिसमें सब्ज़ी और गेहूँ पैदा होते थे। टोकरों में आलू भरकर उसका पिता और बड़ा भाई पाँच

मील फ़ासला पैदल चलकर गाँव से शहर जाते। लौटते समय थोड़े पेड़े अथवा जलेबियाँ ले आते। इसी कारण उसके दो छोटे भाई और वह बेताबी से उनकी प्रतीक्षा किया करते।

कभी-कभी उसे भी शहर जाने का अवसर प्राप्त होता। तब वह हरीराम हलवाई की दुकान से एक आने की रेवड़ियाँ लाता और उनमें से आधी शोभा को देता।

उसके घर के सामने आम का एक पेड़ था, जो वर्षा ऋतु में आमों से लद जाता था। वह, उसके दोनों भाई केसर और जस्सा, उसका साथी नन्दू और बिहारी की लड़की शोभा, इकट्ठे होकर आम के पेड़ पर चढ़ाई करते थे। कच्चे आम तक न छोड़ते थे।

फल्गू लम्बरदार के बाग के आम खाने में कितना आनन्द आता था! आम भी तो उसमें खूब बड़े-बड़े थे। वह पेड़ पर चढ़कर स्वयं चख-चखकर नीचे शोभा के लिए फेंकता। केसर और जस्सा शोर मचाते। वह उन्हें चुप करने के लिए कच्चे-पक्के आम ऊपर से फेंकता; परन्तु वह शोर फल्गू के कानों तक पहुँच जाता। गुस्से से आँख लाल किये हुए फल्गू वहाँ पहुँचता। उसे देखकर सब रफू चक्कर हो जाते। वह उनके पीछे दौड़ता, तब तक उसे पेड़ से कूदने का अवसर मिल जाता।

एक बार फल्गू ने नन्दू को पकड़ लिया। फल्गू की लाल आँखें देखकर नन्दू काँप उठा। अपने को बचाने के लिए उसने झट पेड़ के पत्तों के झुरमुट में बैठे हुए रामू की ओर संकेत कर दिया। फल्गू उसे वहीं छोड़ पेड़ की ओर लपका। इतनी देर में वह पेड़ पर से कूद चुका था। परन्तु इसके पहले कि वह भाग निकलता, फल्गू वहाँ पहुँच गया था। कई दिनों से वह शिकार की खोज में था। हाथ आने पर उसे कैसे छोड़ सकता था? फल्गू ने उस दिन अपने मजबूत हाथों से मुक्केबाजी का खूब अभ्यास किया।

इससे उसके मन में उस निर्दयी से बदला लेने की आग भड़क उठी।

उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक वह फल्गू के पेड़ों को उजाड़कर मटिया-मेट न कर देगा, चैन नहीं लेगा और फल्गू को इस मार-पीट का कितना कड़वा फल चखना पड़ा था।

फिर नन्दू भी उसकी आँखों में खटकने लगा। नीच कहीं का! कायर! फल्गू की मार से बचने के लिए झट उसको फँसा दिया। क्या वह उसके लिए आम तोड़कर नहीं फेंक रहा था? वह शोभा को क्षमा कर सकता था। केसर और जस्सा बच्चे थे। उन पर भी उसे क्रोध नहीं था। परन्तु नन्दू को वह किसी तरह क्षमा नहीं कर सकता था। नन्दू पर उसे वैसे ही क्रोध आ रहा था। उसकी बाँसुरी की धुन शोभा को बहुत भाती थी। जब नदी के किनारे शोभा कहती, "नन्दू, गाओ," तो उसके शरीर में जैसे आग लग जाती। उसका जी चाहता कि बाँसुरी छीनकर उसे नन्दू के होठों पर तोड़ डाले और आगे के लिए उन्हें बिल-कुल बेकार कर दे। बड़ा आया है बाँसुरी बजाने वाला!

शोभा तो मूर्ख थी। बाँसुरी के पीछे पागल हुई फिरती थी। क्या उसकी धुन आमों से भी मीठी थी? केवल उसे प्रसन्न करने के लिए बेखटके पेड़ पर चढ़ जाता था और सबसे मीठे आम तोड़कर उसके लिए फेंकता था। उसे रेवड़ियाँ भी खिलाता। जब उसका पिता शहर से लौट-कर उसे पेड़े देता, तो वह उन्हें अकेले नहीं खाता था। शोभा को उसके घर से बुलाता और एक ओर ले जाकर उसे आधे पेड़े दे देता। छुटपन से उसे एक ही आकांक्षा थी—किसी प्रकार शोभा को प्रसन्न रखना। शोभा को देखकर जैसे उसका हृदय खिल उठता था।

परन्तु शोभा थी कि फिर भी बाँसुरी के पीछे बावली रहती। क्यों न वह भी एक बाँसुरी खरीद ले और उसे बजाना सीखे? मगर पैसे कहाँ से लाये? नन्दू का पिता उसके पिता से अधिक धनी था, तभी तो उसने बाँसुरी खरीद ली थी। फिर सीखेगा किससे? नन्दू से तो वह कभी नहीं सीखेगा। अपने पटैत से भला वह कैसे याचना कर सकता था?

यह बात भी न बनी। परन्तु उसने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि

इस खेल में वह नन्दू को हरा देगा और उसे नीचा दिखायेगा। नन्दू के व्यवहार ने उसके मन में उसके विरुद्ध प्रतिकार की आग सुलगा दी थी।

सावन लगते ही शहर में एक भारी मेला होता था। आस पास के गाँवों से लोग मेला देखने इकट्ठे होते। उसके गाँव के लोग भी जाते। बच्चों को खर्च के लिए पैसे मिलते। वह मिठाई खरीदता, जिसमें आधा हिस्सा शोभा का होता। परन्तु उस दिन, जब उसने उसे मिठाई दी तो वह पहले की तरह प्रसन्न नहीं हुई। उसके मुख पर दुख के चिह्न देखकर वह घबरा उठा। क्या मेले में किसी ने उसे छेड़ा था? क्या किसी ने कुछ कठोर शब्द कहे थे? दुखी होने का कोई कारण भी तो होना चाहिए?

"तुम देखते नहीं रामू," शोभा आँखों में पानी भरकर बोली, "वह लड़की, जो नदी के पास बैठी है, उसके बुन्दे कितने सुन्दर हैं?"

"तो इसमें रोने की क्या बात है?"

"न जाने मुझे भी कभी ऐसे सुन्दर बुन्दे नसीब होंगे या नहीं?"

"क्यों नहीं?" उसने एकदम कहा।

"क्या आकाश से टपक पड़ेंगे?"

"आकाश से क्यों, मैं लाकर दूँगा।"

"तुम!" वह उसकी बात को अविश्वसनीय जानकर आश्चर्य से बोली।

"इसमें अचरज की क्या बात है?"

"जाओ हटो रामू," वह उपेक्षा से बोली, "क्या ये भी फल्गू के बाग के आम हैं? इनके लिए रुपये चाहिएँ। तुम्हारे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है।"

कितने कटु शब्द थे; परन्तु थे सोलहों आने सच। उसे अपनी विवशता पर क्रोध आ गया। शोभा को प्रसन्न करने के लिए वह आकाश के तारे तोड़कर ला सकता था। उसकी एक मुस्कान के लिए वह अपना जीवन तक न्योछावर कर सकता था, परन्तु वह कितना अभागा था कि

उसकी साधारण-सी आकांक्षा भी पूरी न कर सकता था। उसे अपनी असमर्थता पर दया आ गई। कहीं ऐसा होता कि उसे एक अथाह शक्ति प्राप्त हो जाती कि वह उस मेले में आई हुई सब स्त्रियों के आभूषण छीनकर शोभा को भेंट कर सकता।

उस मृगनयनी के नेत्रों से निकले हुए बड़े-बड़े आँसुओं ने उसके मन में एक तूफान उठा दिया। उसके दबे हुए भाव उभर आये। उसकी छिपी भावनाएँ आँखों के सामने तैरने लगीं। उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे उसके मुर्दा हौसले जीवित हो रहे हों, उसके लड़खड़ाते हुए विचार सँभल रहे हों और लरजते हुए वलवले जवान हो रहे हों। एक ही विचार उसके मन में था। अकस्मात् उसके हृदय की लहरों में तूफानी हलचल मच गई। उन लहरों की उछलती हुई छातियों को रौंदता हुआ एक वलवला सीना तानकर खड़ा हो गया।

"शोभा, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।"

"क्या कहा रामू ?" जैसे वह स्वप्न से चौंककर बोली।

"ठीक कहता हूँ।"

"परन्तु कैसे ?"

"तुम्हें इससे मतलब ?"

"क्या चोरी करोगे ?"

"छी ! चोरी क्यों करूँगा ? क्या मेरी इन भुजाओं में बल नहीं ? मैं कमाकर लाऊँगा।"

अचानक उसने अनुभव किया कि उसकी पीठ पर लोहे के हथौड़े चल रहे हैं और वह उनके नीचे दबा जा रहा है। उसने पीछे मुड़कर देखा। पण्डित तड़ातड़ मुक्कों की वर्षा कर रहा था।

"सुअर कहीं का ! रात को क्या करता रहता है जो इस समय सो रहा है ? इतनी आवाजें दीं, तू सुनता ही नहीं ! कितने ग्राहक खाना खाने के लिए बैठे हैं और तू मज़े में सो रहा है। यदि काम नहीं कर सकता, तो माँ के पास जाकर सो रह।"

वह सचमुच दोषी था; काम करते-करते सो गया था। परन्तु वह रात को भी कब चैन से सो सकता था ? अत्यन्त कठिनता से वह रात को दो बजे काम से छुट्टी पाता और पाँच बजे दीना रसोइया गालियाँ देकर, लातें मारकर उसे जगा देता और फिर सारा दिन काम। यम-दूत की तरह पण्डित सिर पर सवार रहता। नंगे सिर और पैर, मैली कमीज और गन्दी धोती पहने पण्डित गन्दगी का चलता-फिरता चित्र था। साँड के समान मोटा-ताज़ा। बराबर गरजता रहता था। उसके सारे नौकर उससे डरते थे।

वह टीन के डिब्बे में से घी निकालकर लोहे के चमचे में डालता और उसमें कटा हुआ प्याज मिलाकर उसे आग पर रख देता। दाल और सब्जी निकाल वह दो कटोरियों में डाल देता और उनमें तड़का हुआ घी और प्याज छोड़ देता। इस क्रिया से एक आवाज़ पैदा होती, जो पण्डित की कर्कश आवाज से भी अधिक कटु होती। परन्तु वह उन दोनों आवाजों से परिचित हो चुका था। दोनों कटोरियों को उठाकर थाली में रखता और आवाज देता "बाबू जंगीराम !"

लछमन थाली उठाकर बाबू जंगीराम के आगे रख देता। हाँ, उसमें राख से लिपटी हुई दो रोटियाँ रखकर।

एक ओर से आवाज आती, "पानी !"

पण्डित चिल्लाकर कहता, "चल बे, रामू के बच्चे ! बाबू चेलाराम को पानी दे।"

फिर आवाज आती, "चपाती !"

पंडित फिर चिल्लाता, "लछमन ! सरदार रूपसिंह को रोटी दे। फिर बैंक वाले बाबू सीताराम की आवाज़ सुनाई देती, "पंडित ! पानी बहुत गरम है। दो पैसे की बरफ तो मँगाओ।"

रामू बरफ लेने चला जाता। लौटने पर पंडित की गालियाँ बेताबी से उसकी प्रतीक्षा करती होतीं। वह कितनी जल्दी क्यों न लौट आता, पंडित गाली दिये बिना न रहता। गालियाँ उसके अंग-अंग में बिंध चुकी

थीं। साँस लेते समय भी वह गालियाँ उगलता, जैसे उसके ऐसा न करने से गालियों का अकाल पड़ जाने का भय हो।

पंडित के ढाबे के साथ मिला हुआ एक घर था, जो उसने किराये पर उठा रखा था। कालेज के विद्यार्थी, जो होस्टल का खर्च उठा न सकते थे तथा दफ्तर और बैंक के थोड़े वेतन वाले बाबू वहाँ रहते थे। एक-एक कमरे में चार या पाँच बाबू पड़े रहते। ऊँची श्रेणी के लोगों के व्यवहार से चिढ़े हुए निम्न-मध्यवर्ग के ये लोग अपने घृणा-भाव को ढाबे के गरीब और बेवस नौकरों पर निकालते। इस आनन्द का अनुभव कि रोब जमाने और उच्चता का भाव दिखाने के लिए समाज में उनसे भी नीचे वर्ग के लोग पड़े हैं, उन्हें पागल बनाये रखता। अपनी साधारण हैसियत की परवाह न करते हुए वे वहाँ शान से रहना चाहते थे। इस शान को बनाये रखने के लिए वे खाना अपने कमरे में मँगवाते।

इस कार्य के लिए रामू ही नियुक्त होता। उसका काम अवश्य बढ़ जाता, परन्तु उसे इसका प्रतिफल कभी न मिलता। गरमियों में तो उसकी शामत ही आ जाती। दोपहर के समय नंगे सिर और नंगे पैर, दोनों हाथों से गरम थाली सँभाले वह बाबू लोगों के कमरों में जाता। फिर बरफ लाने की आज्ञा होती। तब तक रोटी चुक जाती। इसके बाद दाल या सब्जी के लिए दौड़ना पड़ता। इस पर भी बाबू लोग प्रसन्न न रहते। वह अकेला और खाना खाने वाले कई। सबको प्रसन्न रखना अत्यन्त कठिन था, इसलिए गालियाँ खाना अनिवार्य था।

कोई-कोई बाबू अपने क्रोध को काबू में न रख सकता और उसके एक-दो चाँटे भी मार देता। वह चुपचाप यह सब सह लेता।

परन्तु पण्डित फिर भी नाराज रहता। कमरों में इतनी देर लगाने का क्या मतलब ? ढाबे में भी तो ग्राहकों को भुगताना था। क्या यह काम उसका बाप करता ? कमरे वाले बाबू क्या रोटी के अधिक पैसे देते थे ? पण्डित उनको कुछ न कहता और सारा क्रोध रामू पर निकालता, जैसे रामू उन सब का प्रतिनिधि हो। रामू फिर भी चुप

रहता। उस पर यह भेद पूर्णरूप से खुल चुका था कि जबान लड़ाने में उसे ही घाटा रहेगा। यदि पण्डित बात का उत्तर जबान से न दे सके, तो उसके पास मुक्कों की कमी नहीं थी।

पण्डित को इस बात की खास शिकायत थी कि दूसरे कामों में वह उसकी भैंस को भूल जाता था। जब वह जानता है कि यह एक दिन का नहीं, नित्य का काम है, तो इसमें आनाकानी क्यों करता था? दूध क्या खाक देगी? यदि नौकर ऐसे साधारण काम को भी न कर सके तो उसे रखने से क्या लाभ? वह भैंस की सेवा-टहल में उपेक्षा सहन नहीं कर सकता था और प्रायः अपना क्रोध मुक्के मारकर निकालता था।

रामू को इस बात का अनुभव होने लगा कि पण्डित का काम उसे पीटना और उसका काम चुपके से मार खाना है। वेतन या रोटी के बदले पण्डित को उसके शरीर पर पूर्ण अधिकार है। वह शायद इस सिद्धान्त को मानने से इन्कार कर देता, परन्तु उसे अपनी प्रतिज्ञा का खयाल था। शोभा के नेत्रों से निकले हुए बड़े-बड़े आँसू उसके सामने तैरते रहते।

उसकी इन सेवाओं के बदले उसे ढाबे का पका-पकाया भोजन मिलता था। जब सब ग्राहक निपट जाते तो उसकी बारी आती। मोटी-मोटी रोटियों के साथ बची-खुची दाल-सब्जी से पेट भरना होता। प्रायः कुछ बाबू देर से आते और खाना खाने के लिए हठ करते। पण्डित बची-खुची दाल-सब्जी भी उनकी भेंट कर देता। तब रामू को दाल-सब्जी के बिना ग्रास निगलने होते। पानी के घूँट ऐसे अवसरों पर उसकी सहायता करते। वह अचार नहीं ले सकता था, क्योंकि अचार तो बाजार से मोल आता था और केवल बाबू लोगों के लिए था। नौकर तो अचार खाकर बिगड़ सकते हैं।

उसे बहुधा अपने घर की याद सताती, जहाँ उसे सुख की रोटी प्राप्त होती थी। कितना अन्तर था बाबुओं की कर्कश झिड़कियों और झरनों के सुरीले गीतों में, पण्डित की गन्दी गालियों और नदी के मधुर

तरानों में। एक ओर मनुष्य की अकथनीय क्षुद्रहृदयता थी और दूसरी ओर प्रकृति की असीम उदारता। कहाँ पण्डित की डरावनी आँखें और कहाँ शोभा की जादू-भरी दृष्टि! जीवन भी क्या है? फूल के साथ काँटे, सुख के साथ दुख।

उसे नौकरी करते छः महीने हो गए थे। उसने हिसाब लगाया कि पण्डित के पास उसके एक सौ चालीस रुपये जमा हैं। इतने दिनों में उसने केवल दस रुपये लिये थे। इन रुपयों में से उसने शोभा के लिए उपहार खरीदे थे। जब कभी वह बाज़ार जाता, तरह-तरह की चूड़ियाँ और कंगन उसे दिखाई देते। अगले दिन वह पण्डित से पैसे माँगकर इन चीज़ों को खरीद लाता। ये उसके अपने रुपये थे, परन्तु वह बड़ी ही हिचकिचाहट के साथ इन रुपयों को माँगता, जैसे अपनी कमाई के पैसे माँगना कोई अपराध हो।

इन चीजों को सँभालकर वह लकड़ी की एक छोटी-सी सन्दूकची में रख देता। यह सन्दूकची और एक छोटा सा ताला उसने सस्ते दामों में बाज़ार से खरीदा था। काम करते समय वह कई बार कोठरी में जाकर देखता कि सन्दूकची को किसी ने उठा तो नहीं लिया या किसी ने उसका ताला तो नहीं खोल लिया।

उसे लछमन पर शक रहता था, क्योंकि पण्डित के तमाम नौकरों में से वही उससे शत्रुता रखता था। लछमन की मरम्मत करने का उसने मन में कई बार निश्चय किया था। परन्तु एक अनजान डर उसके मार्ग में रुकावट डालता। वह केवल उसकी निगाहों में अपनी क्रोध-भरी दृष्टि डालकर चुप रह जाता; जैसे उसे जतला रहा हो कि एक दिन उसकी यह नेत्र-ज्वाला उसके हाथों में उतरकर उसके गालों को अवश्य लाल करेगी।

एक दिन रागू को ढाबे के सामने खड़ा देखकर वह अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर सका। वह दौड़कर उसके पास गया—हृदय में सहस्रों प्रश्न और लाखों आकांक्षाएँ लिये। परन्तु पण्डित की गन्दी गाली

और कर्कश झिड़की ने उसके पैरों में ज़ंजीर डाल दी।

"क्या तुझे मालूम नहीं कि अभी बाज़ार से भैंस के लिए बिनौले लाने हैं ?" पंडित ने गरजकर कहा।

आज उसे पहली बार पंडित पर क्रोध आया। उसके हृदय में उबाल उठा। वह उसे स्पष्ट बता देना चाहता था कि वह राणू से मिलने के बाद बाज़ार जायगा। परन्तु शब्द ज़बान पर आकर रुक गए। पंडित की आवाज उसके कानों में फिर गूँजी।

"सुअर का बच्चा, खड़ा क्या देख रहा है ? बहरा है क्या ?"

वह चुपचाप वहाँ से चल दिया। आज उसे पहली बार अपनी दुर्बलता का ज्ञान हुआ और पहली बार उसके मन में पंडित के विरुद्ध प्रतिकार का धुआँ उठा। क्या उसे राणू से मिलने का कोई अधिकार नहीं था ? न जाने वह गाँव से क्या सन्देश लाया था ? उसके अपने घर का, गाँव का और शोभा का। कितनी उद्विग्नता से वह उसकी प्रतीक्षा करती होगी ! प्रतिदिन उसकी बाट जोहती होगी।

सहसा एक धक्का लगा। सूट-बूट और हैट पहने एक बाबू उसे गालियाँ दे रहा था—

"अंधा है बे ? देखकर नहीं चलता ?"

वह सँभलकर चलने लगा। उसे याद आया कि उसे भैंस के लिए बिनौले लाने हैं। काश, वह बिनौलों की जगह विष ले आता। आधा भैंस को और आधा पंडित को खिला देता। विष खाकर जब पंडित तड़पता, तब वह उसकी छाती पर बैठकर उसके गालों पर तमाचे लगाता। पंडित के मुँह से रक्त का सोता फूट पड़ता। वह आनन्द से नाचता और चिल्ला-चिल्लाकर कहता—

"दुनिया वालो, देखो, आज मैं कितना प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि आनन्द का अनुभव करने के लिए प्रतिशोध की ज्वाला को ठंडा करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि शान्ति चाहते हो तो बदला लेने से मत चूको। अपने शत्रु के रक्त की नदियाँ बहा दो और यदि फिर

भी कसर रहे, तो उस रक्त के घूँट पी डालो। ऐसा करने से तुम्हें इसी संसार में स्वर्ग का आनन्द प्राप्त होगा।"

जब वह बाजार से लौटा, तो रागू सब्जी छील रहा था। पंडित के पास एक नया शिकार फँसा था। उसकी रागू से बात करने की हिम्मत न हुई, क्योंकि पंडित पास ही चारपाई पर बैठा हुक्का पी रहा था। काश, वह हुक्का छीनकर चिलम की आग से उसकी मूँछ और सिर के लम्बे-लम्बे बाल झुलसा देता और यदि आग उसके शरीर पर फैलने की इच्छा प्रकट करती, तो हुक्के का पानी उस पर उँडेल देता। और यदि पंडित शोर मचाता या गाली बकता तो वह हुक्के की 'नय' उसके शरीर पर तोड़ देता। हुक्का भी कितनी बहुमूल्य वस्तु है और अवसर आने पर इससे कितने काम लिये जा सकते हैं। परन्तु अभी उसे भैंस को चारा देना था।

रात को रागू से मिलने के पूर्व उसका हृदय खूब धड़क रहा था। वह घर, गाँव और शोभा की खबर सुनने के लिए व्याकुल था। रागू के पास बैठकर वह गाँव की तमाम बातें सुनेगा। गाँव की स्त्रियों के क्या अनुमान होंगे? शोभा के मन का क्या हाल होगा? परन्तु यदि शोभा को कुछ हो गया हो, तो? हो सकता है, प्रतीक्षा से तंग आकर उसने आत्महत्या कर ली हो। यह भी तो हो सकता है कि उसके पिता ने उसका विवाह किसी बूढ़े से कर दिया हो। उसका उत्साह एक अज्ञात भय से दबने लगा।

उसे रागू से पता चला कि बूढ़ा बाबा मर गया। एक गाय चल बसी। उसके माता-पिता का पूर्ण विश्वास था कि उनका रामू अभी जीवित है। उसकी माता हर समय उसकी याद करती रहती है। दूसरी स्त्रियों से बातचीत करते समय आँसुओं की झड़ी लगा देती है। नन्दू का विवाह हो चुका है, फल्गू मर गया है। उसके बाग को दीना चौधरी ने खरीद लिया और शोभा? वह अभी जीवित है। उसके आने के बाद चार मास तक तो वह प्रसन्न-चित्त रही। उसका यौवन उभर आया

था। सौन्दर्य निखर आया था। परन्तु किसी ने गाँव में खबर उड़ा दी कि रामू नदी में डूबकर मर गया। इस सूचना ने उसका दिल दुखा दिया और वह दुखी रहने लगी। उसका मुँह उतर गया। वह उदास और गुमसुम रहने लगी।

उसकी इस चिन्तनीय अवस्था ने उसके माता-पिता को शोकग्रस्त कर दिया। उन्होंने उसका विवाह कर देने का निर्णय कर लिया। परन्तु शोभा ने मना कर दिया। डाँट और गुस्से का उस पर कुछ असर न हुआ। जब बात तूल पकड़ने लगी, तो उनसे छः महीने का समय माँगा। उसका पिता तुरन्त विवाह कर देने पर तुला हुआ था। परन्तु माँ ने समझा-बुझाकर छः महीने और प्रतीक्षा करना उचित समझा। उसकी अवस्था अब चिन्तनीय है और यदि ऐसी ही रही तो बचने की कोई आशा नहीं।

इस सन्देश ने उसे चिन्ता के गर्त में ढकेल दिया। दुख का पहाड़ उस पर टूट पड़ा। रागू ने और भी बहुत कुछ बताया। परन्तु उसका ध्यान केवल एक ही बात पर केन्द्रित था। शोभा की बीमारी की खबर ने उसे अधमरा कर दिया। किन्तु वह प्रसन्न भी था। शोभा उसे प्यार करती थी। उसकी याद में घुल रही थी। उसकी यह कसक कितनी मीठी थी। उसे अपने ऊपर गर्व होने लगा। यह क्या कम सन्तोष की बात थी कि सारे संसार में उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। शोभा केवल उसकी थी। शोभा के हृदय पर केवल उसीका शासन था। नन्दू ही उसकी राह का रोड़ा था। परन्तु उसका विवाह हो चुका था। अब मैदान साफ था।

वह उससे मिलने के लिए उतावला हो उठा। अब शहर में रहना बेकार था। उसने रुपये भी कमा लिए थे। अगले दिन वह पण्डित से रुपये लेगा। बाजार से एक सुन्दर बुन्दों की जोड़ी और एक अच्छी रेशमी साड़ी खरीद लेगा। इन दोनों चीजों तथा अन्य उपहारों को लेकर वह सीधा गाँव को रवाना हो जायगा। सबसे पहले वह शोभा ही से मिलेगा। उसे देखकर शोभा अपनी आँखों पर विश्वास न करेगी!

सहसा उसे देखकर चकित रह जायगी।

वह उसे नदी के किनारे ले जायगा। सबसे पहले वह रेशमी रूमाल उसे भेंट करेगा। सन्दूकची से साड़ी और बुन्दों की जोड़ी निकालकर देगा। वह प्रसन्नता से नाच उठेगी। उपहारों को देखकर वह विह्वल हो उठेगी। उसके चेहरे पर लाली की लहर दौड़ जायगी और वह आवेश से कहेगी, "रामू, तुम कितने अच्छे हो!"

केवल इन्हीं शब्दों को सुनने के लिए तो उसने घर-बार छोड़, कष्ट सह, शहर में नौकरी करना स्वीकार किया था। इन शब्दों की गूँज से उसके हृदय का एक-एक तार बज उठेगा। उसकी नस-नस में एक मधुर गीत का आलाप गूँज उठेगा। उसका अंग-अंग थिरक उठेगा।

तब वह शोभा को, अपनी उस स्वर्ग की अप्सरा को, बाँहों में कसकर उसके रस-भरे अधरों पर अपने अमर प्रेम की छाप लगा देगा। ठण्डी हवा के झोंके उसके बालों की लटों से छेड़छाड़ करेंगे। वह बार-बार अपने हाथों से उन लम्बे बालों को उसके मुँह पर से हटायेगा। उसके इस अथाह आनन्द को देखकर देवता भी उससे स्पर्द्धा करने लगेंगे। काश, वह उड़कर उसी समय अपने गाँव पहुँच सकता। परन्तु अभी उसे अपने रुपये लेने थे।

अगले दिन प्रातःकाल रामू को अपनी कोठरी में देखकर पण्डित विस्मित हो उठा। वह जागने के बाद चारपाई पर बैठा हुक्का पी रहा था। उसने अभी तक लिहाफ ओढ़ रखा था। उसके तकिये का गिलाफ जैसे पिछले छः मास से धोया नहीं गया था। बिछौने की चादर में सिकुड़न पड़ने के कारण नीचे की मैली गन्दी दरी दिखाई दे रही थी। एक कोने में लकड़ी का एक सन्दूक रखा था, जिसमें एक बड़ा सा ताला बन्द था। एक दीवार पर कृष्णजी का चित्र लटक रहा था। उस पर जाला लगा था। पास ही एक कैलेंडर था, जिसमें किसी फिल्म अभिनेत्री की तस्वीर छपी थी। दूसरी ओर कांग्रेसी नेताओं की तस्वीर वाला कैलेंडर था। एक तरफ दीवार पर एक कटार लटक रही थी।

रामू को देख पण्डित की भौहें तन गईं। वह गरजकर बोला, "क्यों बे सुअर, सुबह-ही-सुबह क्यों आ मरा ?"

आज पण्डित की आवाज सुनकर उसके मन में भय या घबराहट नहीं हुई। न उसने निगाहें नीची करके भूमि को कुरेदने का प्रयत्न किया। उसने गरदन ऊँची करके कहा, "मैं घर जा रहा हूँ।"

"क्या कोई मर गया है ?" पण्डित ने शरीर तानकर कहा।

"क्या लोग इसी कारण घर जाते हैं ?"

"क्या बकता है ? जा, अपना काम कर !" पण्डित ने क्रोध-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा।

"मैं घर जा रहा हूँ। मेरा हिसाब कर दीजिए।"

पण्डित को जैसे मधुमक्खी ने काट लिया। उसे यह माँग बहुत ही अस्वाभाविक जान पड़ी। उसने लिहाफ एक ओर फेंक दिया और आँखों से चिनगारियाँ निकालता हुआ बोला, "सुअर, यह कोई हिसाब का समय है ?"

न जाने कितनी बार वह इस गाली को सुन और हज़म कर चुका था। आज भी हज़म करते देर न लगी। बोला, "और किस समय आऊँ ?"

"मैं इस महीने में हिसाब नहीं कर सकता। अगले महीने देखा जायगा।"

अगले महीने ? वह डर गया। वह तो एक दिन भी नहीं ठहर सकता था। एक महीना उसके लिए एक युग के समान था। वह तो उड़कर अपने गाँव पहुँच जाना चाहता था। यदि सचमुच पण्डित अपनी बात पर अड़ गया ? इस विचार ने उसे कँपा दिया। वह उसके सामने गिड़गिड़ाने लगा। उसने विनती की। परन्तु पण्डित हर बात का उत्तर गाली से देता। जब वह गालियाँ देते-देते थक गया, तो तंग आकर बोला, "गधे, व्यर्थ मेरा समय नष्ट न कर। जाकर अपना काम कर।"

रामू को न जाने क्या सूझी—उसका दीन भाव जाता रहा। तनकर

बोला, "पैसे मेरे अपने हैं। यह मेरी मेहनत और धर्म की कमाई है। मैं इन्हें लेकर ही यहाँ से हिलूँगा।"

पण्डित पर जैसे गरम लोहे की चोट पड़ी हो। वह तड़प उठा। होंठ भींचकर, मुक्का तानकर, भूखे भेड़िये के समान वह शिकार पर टूट पड़ा। रामू जैसे बेदम हो गया। सहसा रक्त की एक बूँद भूमि पर टपकी और उसकी नजर सामने वाले शीशे पर पड़ी। उसके रक्त से लथपथ मुँह पर सिर के बाल बुरी तरह बिखरे हुए थे। मुँह सूजा हुआ था। आँखों के ऊपर एक घाव हो गया था।

क्या वह यह भद्दी सूरत लेकर शोभा के पास जायगा? एक लावण्यमयी अप्सरा एक कुरूप हब्शी को कैसे स्वीकार कर सकती है? उसकी छः मास की मेहनत अकारथ जा रही थी, आशाएँ दम तोड़ रही थीं। उसके सुनहले सपने टूट रहे थे, फलों से भरे पेड़ को एक तीव्र आँधी जड़ से हिला रही थी। यदि वह इस आँधी का साहस के साथ सामना करने से चूक गया तो आशा की अन्तिम किरण भी बुझ जायगी।

पण्डित अब क्रोध से काँप रहा था। शायद वह उसे मार डालने पर ही तुला हुआ था। न जाने रामू को क्या सूझी कि उसने उठकर झट से किवाड़ बन्द कर दिये।

इसके बाद कोठरी के भीतर से जोरदार चीखें आने लगीं। घर के लोग, मुहल्ले के आदमी और ढाबे के सब नौकर बाहर इकट्ठे हो गए। दरवाज़ों पर मुक्कों की घोर वर्षा हो रही थी। वे काँप रहे थे, लेकिन खुलने का नाम न लेते थे। सहसा दीवारों को फाड़ती हुई, दिलों को चीरती हुई एक दर्द-भरी चीत्कार कोठरी से बाहर निकलकर वायु में मिल गई। साथ ही करारी चोटों के कारण दरवाजा खुल गया।

कोठरी के फर्श पर पण्डित का शरीर रक्त में नहा रहा था। उसकी गरदन और छाती से तेजी से रक्त बह रहा था। पास ही लहू से लाल, कटार पड़ी थी। नीची निगाह किये रामू किसी गहरे सोच में तल्लीन खड़ा था।

शहर से शहर तक

दस घंटे की कठिन तपस्या के बाद गाड़ी जेहलम पहुँची। ताँगा हमें शहर से ग्यारह मील दूर गटालिया पत्तन पर ले गया। हम तीनों एक नाव में सवार हो लिए। दो नाविक चप्पू चलाने लगे। नाव के पार लगने पर दोनों नाविक नाव से उतर पड़े। अगला पत्तन वहाँ से तीन मील दूर था और किश्ती को प्रवाह के विरुद्ध चलना था। किनारे पर पानी थोड़ा था, इसलिए दोनों खेवट पानी में उतरकर किश्ती ढकेलने लगे। मेंहदी (नाविक) अभी ग्यारह-बारह वर्ष का होगा। उसका काला चेहरा और काली टाँगें इस बात का समर्थन कर रही थीं कि उसने गरमियों की कड़ी धूप में नाव खेने का खूब अभ्यास किया है। उसने अपनी ताजी धुली हुई कमीज अपने मैले लँगोटे की तह में खोंस ली थी। मैंने पूछा—

"अरे मेंहदी, किश्ती तो बिलकुल नई है। लकड़ी कहाँ से ली तूने ?"

"बाबू जी आपकी दया से मिल ही जाती है।"

"मोल ली है ?"

"खुदा झूठ न बुलवाये, बाबूजी। मोल तो नहीं ली, पर पूरे दो सौ की लकड़ी है। तेजामल-बनारसीदास के फ़र्म की है।"

मेंहदी हँसा। उसके कौड़ियों-से सफेद दाँत चमके और काली-काली आँखें भी। वह ज़ोर से नाव को ढकेलने लगा। अकस्मात् वह ऊपर को

चूर कर सकती थी। तब हमारे शरीर शायद धारा पर निकलते, झेलम नदी की उस तेज़ धारा पर। किन्तु मेंहदी एक अनुभवी नाविक था। वह कूदकर नाव में जा बैठा। उसका साथी भी। पर धारा के विरुद्ध और चट्टानों के बीच नाव को खेना सम्भव न था। दोनों फिर उतर पड़े। एक लम्बे रस्से का एक सिरा नाव से बाँधा और दूसरे को किनारे-किनारे चलकर खीचने लगे। इस तरह हमें चेचियाँ पहुँचा दिया।

"जरा सँभलकर नाव चलाया करो, कही मेंहदी धुल न जाय।" हमारा बैरा नाविक को परामर्श दे रहा था।

इस जगह काश्मीर की सीमा आरम्भ होती है। चुंगीघर में एक काले ट्रंक पर एक गोरे रंग का मनुष्य विराजमान था। एक छोटी-सी भीड़ उसे घेरे खड़ी थी। उसकी एक आँख सदा के लिए बन्द हो चुकी थी। लेकिन अभी नाड़ी (नब्ज़) चल रही थी। नहीं तो वह किस तरह फलों का डिब्बा खोल चेचियाँ के नाविकों और कस्टम हाउस के नौकरों को फल बाँटता। वह सबको चिल्ला-चिल्लाकर बुला रहा था। अरे बदूर! ओ रहमू! चल बे दीवान! और बुलाता क्यों न? डिब्बा उसका अपना तो था नहीं। डिब्बे का मालिक रोनी सूरत बनाये पास खड़ा था।

चेचियाँ से ताँगे में हम मीरपुर पहुँचे। वहाँ से चौमुख तक फिर ताँगे से यात्रा थी। सूखी और नीरस। बैरे ने ताँगे वाले अहमददीन से छेड़ शुरू की। वह एक लम्बे क़द और भरे शरीर वाला कोचवान था।

"अरे ताँगा चलाना जानते भी हो?" बैरे ने व्यंग्यपूर्वक पूछा।

"ग्यारह साल विलायत में काट चुका हूँ, समझे, ग्यारह!" उसने गरदन घुमाते हुए उत्तर दिया।

"वहाँ तांगा चलाते थे ?"

"ताँगा क्यों चलाता ? वहाँ तो अपना बैपार था। और ऐश।"

"ऐश तुमने क्या खाक की होगी !" बैरे ने उसे उकसाया।

"वहाँ, वहाँ तो बहार थी," उसने घोड़े को चाबुक लगाते हुए कहा। "आजाद मुल्क और आजाद खयाल। हरएक बात में आजादी थी।"

"हर एक बात में ?" बैरे ने आँखें फाड़कर पूछा।

"हाँ, हर एक बात में," अहमददीन ने एक आह खींचकर कहा। "भला विलायत की क्या पूछते हो ? कोई पाबन्दी नहीं। जिस लड़की से चाहो, बात करो। जिस किसी के साथ चाहो, फिरो।.....छिक हरामी," उसने घोड़े को चेतावनी देते हुए कहा।

अहमददीन की आजादी की बातों ने बैरे को भी आजादी के पथ पर चलने को प्रेरित किया। वह भूल गया कि उसका साहब पिछली सीट पर हैट लगाये और छड़ी हाथ में लिये बैठा है। उससे न रहा गया। बोला, "अहमददीन ! बड़ी बेवकूफी की, जो वहाँ से लौट आये।"

"अगर वालिद मरहूम एक क़तल के मुकदमे में न फँसते तो वहाँ से कौन आता ? अब भी विलायत की याद अक्सर सताती है। वहाँ की लड़कियाँ भी तो कमाल की हैं। खुद आपसे छेड़ करेंगी—जान-बूझकर। पंजाबियों को खूब पसन्द करती हैं ये छोकरियाँ।....छिक् बदज़ात !"

"पंजाबियों को ?" बैरे ने उसको टोका। उसकी राल टपक रही थी।

"उनके पीछे तो वे भागती हैं।···छिक् सूअर !"

"तो अहमददीन, तुम स्वर्ग से नरक में कहाँ आ टपके ?"

"ठीक कहते हो। हाँ, एक दिन एक गोरा रो रहा था। मैंने पूछा—'वाट इज मैटर ?' उसने रोते हुए कहा, 'नो बाडी लव माई डॉटर।'"

"क्या कहा ?" बैरे ने हैरानी से पूछा।

"अरे यह अंग्रेज़ी है। उनकी अपनी ज़बान। मैंने पूछा था, तुम

क्यों रो रहे हो ? उसने कहा, मेरी छोकरी से कोई लव यानी प्रेम नहीं करता, प्रेम ! समझे ?"

बैरे की आँखें खुली रह गईं। वह अपने भाग्य को कोसने लगा, और अहमददीन के भाग्य को भी। काश, वह भी विलायत गया होता। उस गोरे पर उसे दया आ गई। उसका दुख दूर करने में उसे कितना मज़ा आता और वह था भी पंजाबी। शायद कितने ही गोरों पर दया कर सकता था। फिर ऐसे स्वतन्त्र देश में, जहाँ कोई रुकावट न थी। नित्य नई मेम। क्या वह वहाँ न जा सकता था ? वह अपने गाँव में सुना करता था कि मेमों के जहाज हिन्दुस्तान आ रहे है। उनको देहात में भेजा जायगा। उसके अपने गाँव में भी। लेकिन फिर उसे अपनी स्त्री का ध्यान आया और दस बच्चों का। उन्हें क्या करेगा ? क्या विलायती मेम और उसकी स्त्री एक घर में इकट्ठी रह सकेंगी। मेम तो स्वतन्त्रता से फिरेगी, सबके साथ, बिना पर्दे के। और उसकी जोरू तो हाथ-भर का घूँघट निकालती है। गुलाम देश में आजादी कहाँ ?

"छिक हरामी!"

बैरे को एक झटका लगा। उसकी आँखें खुलीं। घोड़ा उस रूखे पहाड़ में ढलान की ओर तेजी से जा रहा था। उसने अनुभव किया कि ग्यारह वर्ष विलायत के स्वतन्त्र जलवायु में रहने के बाद भी वह एक निपुण कोचवान था। काम से उसे आर न थी। यह भी तो स्वतन्त्र देश की शिक्षा थी। थोड़ी सी चूक चार मनुष्य के जीवन-दीप को बुझा सकती थी।

"उतरिये बाबू जी, हम पहुँच गए।"

हम आगे बढ़े। पुंच्छ नदी के इस पार एक मछआ हमारी प्रतीक्षा में था। वह शीघ्र हमें दूसरे तट पर ले गया। इसे चौमुख का पत्तन कहते हैं। रियासत का डाकबँगला पुंच्छ नदी के किनारे सिर उठाये खड़ा था। किसी समय बाढ़ उसके दो-तिहाई भाग को ले उड़ी थी। अब केवल तीसरा भाग था। उसमें दो कमरे और एक बरामदा था।

साफ और हवादार। दो नेवाड़ी पलंग, तीन कुरसियाँ और दो मेज़ें इस बँगले की सम्पत्ति थीं।

अभी एक और पड़ाव था। हमारे लिए घोड़े तैयार खड़े थे। मैं लपककर एक घोड़े पर सवार हो गया। मैंने एड़ लगाई। वह तेज़ हो गया। साथी पीछे रह गए। घोड़े ने ताड़ा कि ज़िन्दादिल सवार है। मैदान की धूल और धूप की तेज़ी ने इसमें अभी मुर्दनी नहीं पैदा की। अतिथियों और सम्बन्धियों के अनवरत आक्रमण भी इसको निःसत्व नहीं कर सके। ज़माने की तुन्द हवा के थपेड़े इसको निर्जीव नहीं बना सके। यह तेज़ घोड़ा सवार के इशारों को खूब पहचानता था। एड़ के इशारों को खूब समझता था। कितने काम की चीज़ है यह घोड़ा! मैंने सोचा—आजकल मशीनगनों, तोपों और टैंकों ने इनका महत्त्व ही मिटा दिया। बुरा हो मोटर के आविष्कारक का। ज़ालिम ने जीवन के वास्तविक आनन्द का नाश ही कर दिया। भला प्रेम और मोटर का क्या सम्बन्ध? कहाँ हैं आज इसके सवार बाज़बहादुर और रूपमती? पृथ्वीराज और संयुक्ता? दूर से माहिये की धुन मेरे कान में पड़ी। घोड़े की बाग उधर मुड़ गई। अब आवाज़ स्पष्ट थी—"मेरया वे माहिया, गड्डी तुर चल्ली अरूखाँ विच अंजू लैके मैं मुड़ चल्ली।" एक सुन्दरी गा रही थी। एक छोटा-सा लड़का उसके पास बैठा खेल में मग्न था। हरी-हरी घास पर वह बैठी थी। बस्ती से दूर। उसकी बकरियाँ भी दूर चली गई थीं। उनसे बेसुध वह अपने माहिये की याद ताज़ा कर रही थी। मुझे देखकर वह चौंकी। लेकिन शीघ्र सँभल गई। मैंने कहा—

"गाओ! चुप क्यों हो गई?"

उसके गुलाबी गाल और भी लाल हो गए।

"शरमा क्यों गईं?" मैंने फिर पूछा।

"कहाँ जाओगे पथिक?" उसने निगाह उठाए बिना कहा।

"शहर।"

"कहाँ से आये हो?"

"शहर से।"

उसकी निगाह उठ गई और मेरे शरीर के अंग-अंग में खुब गई। उसमें व्यंग्य और विस्मय था !

"शहर से आये हो और शहर को जाओगे ? क्या वहाँ के जीवन से ऊबे नहीं हो ? बनावटी और झूठी खुशी से तुम्हारा मन नहीं भरा ? क्या अख़बार और रेडियो, सिनेमा और मोटर के बिना मनुष्य का निर्वाह नहीं हो सकता ? क्या राड़ ही मानुषिक जीवन का तत्त्व है ?" वे आँखें मुझे निमन्त्रण दे रही थीं, उस वायुमण्डल में रहने का, उस जीवन को अपनाने का। छोटा-सा गाँव होगा और उसमें चार-पाँच घर। झगड़ों से दूर और प्रेम-मदिरा से भरपूर। अनजाने घोड़े को एड़ लग गई। वह हवा से बातें करने लगा। मैंने पीछे मुड़कर देखा, वह खड़ी हसरत से ताक रही थी !

पराजय

वसन्त में फूलों से भरा उद्यान अपने यौवन पर था, जैसे गहनों से लदी हुई नई-नवेली वधू। नर्गिस हमें प्राकृतिक नियम की निरन्तरता और नश्वरता की याद दिलाती, वसन्त में सूर्य का प्रकाश उसे जीवन प्रदान करता और ग्रीष्म ऋतु में उसका ताप उसे झुलसा देता। बाग़ में खड़े माली ऐसे जान पड़ते जैसे स्वर्ग की वाटिका में हबशी खड़े हों। उनके मैले वस्त्र तथा मलिन मुख प्रकृति के सुन्दर पहनावे और नर्गिस की रमणीयता से कितने भिन्न थे !

"इन्दिरा, तुम्हारी नूतनता और नर्गिस की नवीनता में कितना सादृश्य है," एक दिन मैंने घास पर लेटे-लेटे कहा।

"ऐसा न कहो," वह व्याकुलता से बोली।

"क्यों ?" मैंने विस्मय से पूछा।

"जानते नहीं, नर्गिस का जीवन-दीप एक दिन से अधिक न हीं जलता," वह आह भरकर बोली। उसकी आह में हज़ारों नाले सिसकियाँ भरते और लाखों विलाप कराहते थे। जब नर्गिस का फूल तोड़कर मैं उसके बालों में लगाता, वह मन मसोसकर रह जाती और कहती, "क्या तुम नहीं देखते कि किस प्रकार बहुधा हमारी स्वार्थान्धता दूसरों की आकांक्षा की हत्या के तुल्य होती है।"

फूलों की सेज के पास बैठे हम घण्टों बातों में तल्लीन रहते। हमें

प्रतीत होता, निरन्तरता हमारे जीवन का अनिवार्य अंग है। हमारी मित्रता में अनगिनत शताब्दियों की अनन्तता पाई जाती है। हम दो आत्माएँ थीं, जिनका एक ही ध्येय था, एक ही मार्ग। शताब्दियों से ध्येय पर पहुँचने की धुन में वे मार्ग पर चल रही थीं। परन्तु यात्रा अभी बाकी थी। ध्येय अभी दूर था। इस निश्चल भाव की प्रबलता कि इन्दिरा का साथ यात्रा की विषमता को घटाने में बड़ा सहायक है, मुझे अकथनीय साहस देता था। उसके निर्मल सौन्दर्य के आगे चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता। उसके मृग-से नयन नर्गिस को चिढ़ाते। जब वह आँखों में सुरमे के डोरे डालती तो तलवार की तेज़ धार का गुमान होता। जब उसके कलियों जैसे सफेद और गुलाब जैसे लाल गालों पर मुस्कान नाचती तो ऐसा जान पड़ता जैसे बरफ़ीले पर्वत पर डूबते हुए सूर्य की लाल किरणें नाच रही हों। उसकी भौंहें कमान के समान ऐंठी हुई थीं। उसके होंठ लाल मदिरा के छलकते हुए प्याले थे। उसके माथे पर लाल बिन्दी ऐसी प्रतीत होती थी जैसे आधे चाँद के माथे पर छोटा-सा लाल चिह्न हो। जब मैं पागलों के समान कह उठता, "इन्दिरा, प्रकृति ने तुम्हें इतना अनिन्द्य सौंदर्य क्यों दिया है ?" तो उसके गुलाबी गाल चमक उठते और उसकी आँखों में डोरे पड़ जाते।

हमारी मित्रता का आरम्भ छुटपन के धुँधले कुहरे से हुआ था। हमें ऐसा जान पड़ता कि हम असंख्य युगों से इकट्ठे रह रहे हैं। अमरत्व हमारी मैत्री का विशेष अंग प्रतीत होता। जीवन-क्षेत्र में हम कन्धे मिलाकर चल रहे थे। स्कूल में हम इकट्ठे जाते, कमरे में इकट्ठे बैठते और खेल-कूद में भी जुदा न होते थे। दूसरे विद्यार्थियों को यह बात अखरती, परन्तु किसी का साहस न होता कि ज़बान खोल सके। मैं छाया के समान उसके साथ-साथ रहता। एक दिन उसे अकेली छोड़कर मुझे कुछ देर के लिए घर जाना पड़ा। लौटने पर मैंने उसे सहन में पीपल के नीचे सिर झुकाये बैठी हुई देखा। मेरी आहट पाते ही उसने आँसू पोंछ कर मुस्कराने का असफल प्रयत्न किया। मेरी हैरानी और व्याकुलता

रोष में बदल गई, जब उसने मुझे बताया कि दिनेश ने उसे छेड़ा था। उसे वहीं छोड़कर मैं क्लास रूम में घुस गया, जैसे भेड़ों के झुण्ड में भेड़िया। जाते ही दिनेश पर पिल पड़ा। लगातार घूँसों की वर्षा ने उसे परेशान कर दिया। उसकी आँखें सूज गईं, गाल फट गए। अन्त में वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। इस अपराध के दण्ड-स्वरूप मुझे स्कूल से निकाल दिया गया। इसका मुझे तनिक भी दुख न था और न इन्दिरा को ही। स्कूलों की कमी ही क्या थी !

कालेज में हमें एक साथी मिल गया। दबे पाँव और मुस्कराता हुआ कमलेश हमारे जीवन में इस प्रकार घुल-मिल गया, जिस प्रकार एक ऋतु दूसरी में गुम हो जाती है। प्रकृति ने उसे सुन्दर मुख और बलवान् शरीर दिया था। वह अत्यन्त बुद्धिमान् था। क्लास में कोई विद्यार्थी उसके आगे दम न मार सकता था। केवल मैं ही उससे टक्कर लेता था। परीक्षा का फल निकलने के बाद हम दोनों में लागडाँट हो गई। परन्तु कुछ दिन बाद हमारी प्रतियोगिता मित्रता में बदल गई। अब तीनों कालेज में इकट्ठे रहते। हमारी मित्रता सारे कालेज के लिए ईर्ष्या का कारण बन गई। पढ़ाई और वादविवाद में हम तीनों कालेज में सबसे आगे रहते। तीनों जीवन-धारा में बहे जा रहे थे। हमारी नैया शान्त पानी पर चल रही थी, जिसे न तूफानों ने परेशान किया था और न भँवरों ने। हमें जान पड़ता कि जीवन एक सुन्दर यथार्थ है, जिसमें नवीन इच्छाएँ, ताजी आकांक्षाएँ और नई धुनें हमें अज्ञात प्रदेशों में खींचे लिये जा रही हैं। जैसे जीवन के सारे मार्ग हमारे सामने खुले पड़े हैं। ध्येय-प्राप्ति की इच्छा इतना न उकसाती, जितना नये मार्ग खोजने की धुन। कमलेश के आने से हमारी सभा में गरमी आ गई थी, क्योंकि उसे बहस का शौक था। यह शौक इन्दिरा में भी प्रबल हो गया था। अब हम जब बाग की सैर को जाते तो चुपचाप प्रकृति-निरीक्षण न करते। एक दिन नर्गिस को देखकर कमलेश बोला, "काश इसकी नवीनता (ताज़गी) सदैव रह सकती।"

"तब इसकी प्रतिष्ठा भी उड़ जाती," इन्दिरा बोली।

"क्यों ?"

"इसलिए कि परिवर्तन ही जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना और प्रकृति का अनिवार्य सिद्धान्त है।"

"आपका विचार है कि यह भाव एक धनी को दरिद्रता की आकांक्षा पालने पर बाध्य करता है ?"

"बेशक। और यही नहीं, अपने अमर नाटक 'मैन और सुपरमैन' में बर्नार्ड शा यहाँ तक लिखता है कि इस भाव से प्रेरित होकर, स्वर्ग के सुन्दर सुखों को छोड़कर, मनुष्य परम प्रसन्नता से नरक की दहकती हुई ज्वाला में कूदना पसन्द करता है।"

"तुम समझती हो कि शा झक नहीं मार सकता ?" कमलेश बोला।

"किन्तु यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि शा का यह विचार यथार्थ के अगाध अध्ययन पर निर्भर है। आप नहीं देखते कि उत्पत्ति से मृत्यु-पर्यन्त मनुष्य के विवरण में कितना घोर परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है और एक समय एक ही मनुष्य में कितने दिमागी परिवर्तन आते हैं।"

"यदि इस बात को ठीक मान लिया जाय, तो समाज मनुष्य को एक ही जीवन-संगिनी से बँधा रहने के लिए क्यों विवश करता है ? क्या परिवर्तन का नियम यहाँ नहीं लागू होता ?"

"मनुष्य-समाज के सिद्धान्त प्राकृतिक नियमों के अनुकरण पर निर्भर नहीं किये जा सकते," इन्दिरा ने उत्तर दिया।

"भला क्यों ?"

"ऐसा करने से समाज में अंधेर मच जायगा।"

"पर यह संकुचित दृष्टिकोण है। इसके कारण जीवन में रोमांस बिलकुल गायब हो गया है," कमलेश ने बालों में उँगलियाँ फेरते हुए कहा।

"रोमांस नहीं, विलासिता, आचारभ्रष्टता," इन्दिरा बोली।

कुछ देर चुप रहने के बाद कमलेश बोला, "रोमांस के बिना जीवन में मज़ा ही क्या रखा है ?"

"और यह मज़ा कितना क्षणस्थायी होता है ?" इन्दिरा ने उत्तर में कहा। "यौवन के कुछ वर्षों तक सीमित।"

"काश, ऐसा न होता और मनुष्य सदैव तरुण बना रहता," कमलेश आह खींचकर बोला।

"डोरियन ग्रे ने भी इसी इच्छा को पाला था और तुम जानते हो उसका क्या अन्त हुआ ?" वह बोली।

"डोरियन ग्रे केवल आस्कर वाइल्ड की कल्पना की सृष्टिमात्र है। इसके सिवा कुछ नहीं।"

"कल्पना हर इच्छा का निर्माण-मात्र होती है और डोरियन ग्रे उन हजारों युवकों के प्रतिनिधित्व का दम भरता है, जो सेक्स को रोमांस और प्रेम का गलत नाम देकर अमरत्व के सुनहरे सपनों का असफल पालन करते हैं। भोग-विलास में सच्ची खुशी की खोज करना उतना ही हास्यास्पद है, जितना मरुभूमि में जल ढूँढ़ना।"

कमलेश चुप हो गया। उसका चेहरा यह प्रकट कर रहा था कि उसे इन्दिरा का उत्तर अच्छा नहीं लगा। वह सोच रहा था, "काश, यह बात गलत हो।"

एक बार इन्दिरा की बीमारी के कारण हम तीनों को कालेज से लम्बी छुट्टी लेनी पड़ी। हम दोनों दिन-रात उसकी सेवा-शुश्रूषा में लगे रहे और आँखों-आँखों में रात काटी। उसके स्वास्थ्य प्राप्त करने पर दी गई पार्टी अब भी मेरे विचारों की सतह पर तैरती है। शहर के प्रतिष्ठित व्यक्तिगण, परी-सी सुन्दरियाँ और तरुण युवतियाँ इस पार्टी को सुशोभित कर रही थीं। उनकी सन्दली, गुलाबी और बसन्ती रंग की साड़ियाँ ऐसी मालूम देतीं, जैसे बाग़ में उतने ही रंगों के फूल खिले हों। उन सुन्दर चेहरों में गुलाब की आब और ताज़गी, लाजवन्ती की लाज, और यौवन की मृदु मुस्कान भरी थी। उनकी मधुर आवाज़ें कोकिलाओं

को लजातीं और उनकी नाजुक अदाएँ अप्सराओं को भी मात करती थीं। इन्दिरा उन सब में श्रेष्ठ थी। जैसे सजी हुई और सुन्दर दासियों के बीच कोई महारानी विराजमान हो। उसमें चन्द्रमा का प्रकाश और गुलाब का सौरभ भरा हुआ था। बीमारी के बाद उसका यौवन और भी चमक उठा था, जिस प्रकार ग्रहण के बाद चाँद। उसके सौन्दर्य में और भी निखर आ गया था, जैसे वर्षा के पश्चात् तरुवर। हमारे पास की मेज़ पर कुछ अतिथि हँस-हँसकर गप्पें हाँक रहे थे। अकस्मात् उनमें काना-फूसी होने लगी। उनकी आवाज़ हमारे कानों तक पहुँच रही थी। एक ने पूछा—

"अशोक और इन्दिरा के साथ यह युवक कौन है ?"

"आप उसे नहीं जानते ? वह है अशोक का मित्र कमलेश।"

"कैसा अनुपम सौन्दर्य है, जैसे स्वर्ग का देवता हो," उनमें से एक बोला—

"और इन्दिरा को भी देखो, जैसे स्वर्ग की अप्सरा हो।"

मैं और कमलेश मुसकरा दिये। इन्दिरा झेंप गई।

गरमियों में हम नदी के तट पर पहुँचते और अपनी नौका को उसके जल पर डाल देते। नदी का जीवन हमें कितना आवश्यक पाठ सिखाता। कितने साधारण आरम्भ से उसने इतना विस्तार प्राप्त किया था, जैसे एक साधारण जागीरदार सम्राट् बन बैठा हो। जीवन के आरम्भ में उसे भयानक कष्टों का सामना करना पड़ा था। परिणाम से उपेक्षित अपने मार्ग पर चलते हुए उसने चट्टानों की सख्त चोटों और पाषाणों की कठोर टक्करों को अपने वक्षःस्थल पर सहा। उस सहिष्णुता ने उसके संकल्प में दृढ़ता और उसके निश्चय में स्थिरता भर दी। सैकड़ों छोटे-छोटे नाले और असंख्य छोटी-छोटी नदियाँ उसके सद्गुणों से प्रभावित हो उसकी ओर खिंच आईं और त्याग भाव से उसके मार्ग में बिछ गईं। त्याग के इस अनुपम उदाहरण ने नदी के अन्तस्तल में प्रबल हलचल पैदा कर दी। उसने अपने व्यक्तित्व को अपने प्रियतम के चरणों पर

न्यौछावर करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और नालों का अनुसरण करती हुई समुद्र से जा मिली। अपनी मनोव्यथा हलकी करने के लिए हम पानी में गोते लगाते, किन्तु सफलता की आशा के बिना। शरीर की बाहरी गरमी कुछ देर के लिए उड़ जाती, पर मनोवेदना के दूर करने के लिए पानी की ठण्डक अपर्याप्त होती।

कमलेश के आगमन ने मेरा बोझ हलका कर दिया था। अब मुझे हर समय इन्दिरा की चौकी भरनी न होती। मेरी अनुपस्थिति में वह घण्टों उसके साथ बातें किया करता। एक दिन मैं आया तो विवाह की समस्या पर विवाद हो रहा था। वह कह रहा था, "मेरा तो यह दृढ़ निश्चय है कि विवाह केवल ढोंग है—विषय-भोग का एक बहाना।"

"क्या आप इसे एक पवित्र सम्बन्ध नहीं मानते ?"

"कदाचित् नहीं। आपके परिवर्तन के नियम के अनुसार मनुष्य स्वभाव से इस सम्बन्ध को निबाहने के अयोग्य है। वह एक विवाह से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। उसके लिए यह अनिवार्य है कि कुछ देर बाद नये रास्तों की खोज करे।"

"स्त्रियों के विषय में आपका क्या विचार है ?" वह बोली।

"स्वतन्त्रता सब के लिए एक जैसी होनी चाहिए।"

"अपनी बहन और पत्नी को यह स्वतन्त्रता देने से तो परहेज न करेंगे ?"

"किन्तु....."

"आप मेरे प्रश्न का हाँ या ना में उत्तर दें ?" इन्दिरा जोश में बोली।

"किन्तु हमारी बहनें और पत्नियाँ इसके योग्य ही नहीं रहतीं। विवाह के पश्चात् उनका यौवन समाप्त हो जाता है और उनका रोमान्स मर जाता है।"

"पर इसका उत्तरदायित्व किस पर है ? मनुष्य-निर्मित सिद्धान्त अब तक स्त्रियों को स्वामि-भक्ति और पति-भक्ति की शिक्षा देते आये हैं।

स्थिर किये हुए मार्ग से हटकर की गई थोड़ी-सी भूल उन पर सामाजिक रोष के बन्द तुड़वा देती है। वही समाज, जो मनुष्य के गर्हित और घिनौने अपराधों को अत्यन्त निर्लज्जता से छिपा लेता है, स्त्रियों के साधारण दोष को क्षमा नहीं कर सकता।"

"वास्तव में हमारा देश अभी सामाजिक क्रान्ति के लिए तैयार नहीं। उन्नति की ओर उठाया हुआ एक पग भी समाज को हिला देता है।" कमलेश बोला।

इन्दिरा जोश में आकर बोली, "क्रान्ति नहीं पतन, उन्नति नहीं अवनति। क्या स्वतन्त्र देशों में इस स्वतन्त्रता ने वहाँ की सामाजिक समस्याओं का हल ढूँढ़ निकाला है? क्या इसके फलस्वरूप वहाँ हर्ष और प्रसन्नता प्राप्त की जा सकी है? कदापि नहीं। इसके विपरीत इस स्वतन्त्रता ने उन देशों में गड़बड़ी पैदा कर दी है। प्रतिदिन के तलाक वहाँ के लोगों की मानसिक जलन के द्योतक हैं। शताब्दियों की स्वतन्त्रता के पश्चात् आज वहाँ के लोग अनुभव कर रहे हैं कि उनके सामाजिक निर्माण की त्रुटियाँ ही उनके आत्मिक सन्ताप का कारण है।"

इन्दिरा के इस अखण्डनीय तर्क-वितर्क ने कमलेश को चुप कर दिया। घूमते हुए पंखे की ओर देखकर वह अनुभव करने लगा कि पंखे ने हवा का निर्माण नहीं किया है। केवल उसकी हरकत कमरे में मौजूद स्थिर वायु में गति ले आई थी। विचारों का ताँता उसके मस्तिष्क में पहले भी विद्यमान रहता था। इन्दिरा की समक्षता इन विचारों को सतह पर ले आती और उसका मुख उसकी मानसिक उलझन का द्योतक होता।

सावन की बहारों का मज़ा हम मिलकर लेते। काली घनघोर घटाएँ आकाश की निर्मलता को इस प्रकार छिपा लेतीं जिस प्रकार पाप के जाले आत्मा की स्वच्छता को छिपा लेते हैं। आकाश में मेघ इस प्रकार दिखाई देते, जैसे मस्त रिन्दों के काले कम्बल वायु में लहरा रहे हों। कोयलों के मधुर स्वर मन को मोहित करते। आमों का सौरभ

मस्तिष्कों को सुरभित करता। सृष्टि का अणु-अणु प्रकृति की उदारता के गीत अलापने लग जाता। घोर वर्षा में हम इस प्रकार घूमते-फिरते, जैसे हृदय से युगों की गरमी निकालनी हो। पीछे भागकर एक-दूसरे को पकड़ने की इस प्रकार चेष्टा करते, जैसे पकड़कर फिर न छोड़ना हो। जब ठोकर खाकर हममें से कोई गिर पड़ता तो हमारे अट्टहास मूसलधार वर्षा के शोर में गुम हो जाते और वर्षा की तीव्रता उन्हें भूमि पर पटक देती, जैसे दैव किसी अभागे की आकांक्षाओं को पछाड़ दे। फिर आमों के कुंजों में बैठकर हम प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द लेते।

ऐसा प्रतीत होता कि समय के शीघ्रगामी वायुयान पर सवार हम ऊपर के लोकों में उड़े जा रहे हों। भूमिवासियों के दुख और कष्ट से दूर हम अपनी उड़ान में मगन जा रहे थे। हमें हैरानी थी कि दुनिया वाले किस प्रकार दैनिक झंझटों में उलझकर जीवन के दुखों को सहे जा रहे हैं। हमें उनकी दशा पर तरस आता। काश वे भी इस ऊँची उड़ान का उपभोग कर सकते और इन फिजाओं का मजा ले सकते! हमें यह विचार छू तक न गया था कि यदि भूमिवासी हमारी उँचाई तक न पहुँच सकते थे तो हमें उनकी पस्तियों को छूना होगा।

समय बीतता गया—वायुयान की द्रुत गति के समान।

यथारीति मैं एक दिन इन्दिरा के कमरे में गया। वह वहाँ न थी। प्रतीक्षा करने के विचार से मैंने वहाँ बैठना उचित न समझा। मेरी दृष्टि उसकी मेज पर पड़ी। एक बन्द लिफ़ाफ़ा पड़ा था। उस पर लिखा था 'तुम्हारे नाम'। मैंने शीघ्रता से उसे खोलकर पढ़ा। पत्र पढ़ते ही मेरे पैर डगमगाने लगे। मैं चक्कर खाकर गिर पड़ा। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था, जैसे सारा कमरा घूम रहा है। भूमि घूम रही है और सारी सृष्टि एक चक्कर में है। मेरी आँखों के सामने अन्धकार छा गया! मैंने देखा, दूर मरघट में एक चिता जल रही है। लोग उस पर लकड़ियाँ और घी डाल रहे हैं। लपटें आकाश को छूने का प्रयत्न कर रही हैं। उस चिता में मेरी सारी आशाएँ जल रही हैं, समस्त आकांक्षाएँ झुलस

रही है। धीरे-धीरे लोगों की भीड़ कम हो गई। अग्नि ठण्डी पड़ गई। मैंने राख को कुरेदा, उसमें कुछ न था। मेरे हाथ हड्डियाँ भी न लगीं।

कमलेश और इन्दिरा किसी अज्ञात स्थान को चले गए थे। विवाहोत्सव तथा सोहागरात मनाने के लिए। उनकी खोज करना व्यर्थ था। यदि वे चोरों के समान भाग निकले थे तो मैं सिपाहियों की भाँति क्यों उनका पीछा करूँ?

बाल्यावस्था से मैंने एक ही आशा को, एक ही इच्छा को पाला था। कमलेश ने आकर उसे मटियामेट कर दिया। एक-एक तिनका इकट्ठा करके पक्षी ने नीड़ का निर्माण किया था। तूफान के एक प्रचण्ड झोंके ने उसे नष्ट कर दिया। मेरी अवस्था उस मनुष्य के समान थी, जिसने एक-एक पाई जोड़कर सम्पत्ति जमा की हो और चोर आकर उस पर हाथ सफा कर गया हो।

मैं जानता था कि कमलेश के मानसिक विकास के साथ-साथ उसकी विलासता भी बढ़ती गई थी। भोग-लालसा को दबाने का उसने कभी प्रयत्न न किया था। एक तेज़ घोड़े पर सवार वह पर्वत की ढलान पर भागा जा रहा था। लगाम उसके हाथ से निकल चुकी थी। गिरकर मर जाने के डर से बढ़कर तेज़ सवारी का मज़ा कई गुना अधिक था। वह घण्टों इस बारे में मुझसे और इन्दिरा से तर्क-वितर्क करता। परन्तु मुझे स्वप्न में भी गुमान न हो सकता था कि वह इन्दिरा ही को फाँस लेगा। वह सुन्दर था; लड़कियों को जीतने का उसमें विशेष गुण था। उसकी तीव्र बुद्धि और वार्तालाप का ढंग उन्हें उसकी ओर खींच लेता। लड़कियाँ उस पर जान देतीं। वह कहा करता, "इसमें मेरा क्या दोष है?" उसकी दो-तीन बार सगाई हो चुकी थी। एक-एक करके उसने सब सम्बन्ध तोड़ दिये थे, क्योंकि लड़कियों के सौन्दर्य की त्रुटियों का समाचार उसे मिलता रहता। मैं कहता, "कमलेश, विवाहिता स्त्रियों को भी छोड़ दिया करोगे? क्योंकि बाह्य सौन्दर्य तो अल्प समय का अतिथि होता है।" वह चुप रहता। उसके मुख की रेखाएँ इस बात की

स्पष्ट घोषणा करतीं कि उसके मस्तिष्क में सौन्दर्य की प्रतिमाएँ चक्कर लगा रही हैं।

मेरे जीवन की चहक विदा हो चुकी थी। जीवन का सारा मज़ा किरकिरा हो गया था। मेरी अवस्था उस पक्षी के समान थी, जिसे व्याध ने उसकी जीवनसंगिनी से अलग कर दिया हो और जो सिसक-सिसककर जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा हो। मैं उस सूखी टहनी के समान था, जिसे वायु का एक प्रचण्ड झोंका वृक्ष से अलग कर दे। कभी मुझे इन्दिरा के व्यवहार पर शोक आता। उसे छिपकर भागने की क्या आवश्यकता थी? यदि वह मेरा अनुमोदन माँगती तो शायद मैं इन्कार न करता और छाती पर पत्थर रखकर उसकी माँग पूरी करता। फिर भी एक दूरस्थ आशा मेरे मस्तिष्क के किसी कोने में अटकी रहती कि चन्द्रमा क्षणिक ग्रहण के पंजे से अवश्य बाहर आवेगा। मेरा हृदय स्थायी बिछोह का गुमान तक न कर सकता था। किन्तु फिर भी एक अवर्णनीय दुख मुझे दबाये रहता।

एक रात मैंने स्वप्न देखा कि कमलेश और इन्दिरा एक पर्वत की चोटी पर एक विशाल शिला पर बैठे हैं। वायु के तेज़ झोंके चीड़ के पेड़ों से छेड़खानी कर रहे हैं। इन्दिरा किसी गहरे विचार में डूबी पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े उठाकर नीचे खड्ड में फेंक रही है। दूर नीचे एक पहाड़ी नाला गूँज रहा है। कंकड़ियों की ध्वनि उनके कानों में जारी रहती, जब तक कि वे नाले के बहाव में जाकर न मिल जाते। अकस्मात् कमलेश बोल उठा, "इन्दिरा, आजकल तुम मौन क्यों रहती हो? अशोक की याद तो नहीं सता रही?"

"यदि सताए भी तो क्या कर सकती हूँ?" वह आह भरकर बोली।

"यदि चाहो तो उसके पास वापस भेज दूँ।"

"अब वहाँ जाकर क्या करूँगी? देखते नहीं मैं बच्चे की माँ बनने वाली हूँ?"

"बच्चे की माँ!" वह विस्मय से बोला, "किसका बच्चा है?"

"अपने बाप का और किसका ?" उसका मुँह लाल हो रहा था।

"किस बाप का ?"

"क्या बाप दस होते हैं ? तुम्हारा, और किसका ?"

कमलेश की क्रोधज्वाला भड़क उठी। उसे इस बात का गुमान तक न था। वह यह चाहता ही न था। इसी कारण वह विवाह के संस्कार में टालमटोल कर रहा था। उसे बच्चों और विवाहों से नफ़रत थी। वे जीवन के सुन्दर स्वप्नों का ध्वंस कर देते हैं। उसे पुरानी घटनाएँ एक-एक करके याद आ गईं, जब उसने निष्कपट, भोली और सुन्दर लड़कियों को झूठे प्रेमपाश में बाँधकर उनका रस निचोड़कर, उन्हें फेंक दिया था। विवाह उसके लिऐ एक बन्धन था और बच्चे एक जाल। वह बन्धनों को तोड़ना और जाल को उधेड़ देना चाहता था। भोग-विलास ही उसके लिए महान् आकर्षण था। स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध इससे बढ़कर उसकी दृष्टि में कुछ न था। आज उसकी आँखों के सम्मुख उसके जीवन का आदर्श कुचला जा रहा था। वह जोश से उठा और बोला, "तुम्हारी याद में घुलकर अशोक अब तक मर चुका होगा। तुम इस जन्म में उससे नहीं मिल सकतीं। लो, उससे वहीं मिलना।" और बढ़कर उसने उसे ज़ोर से खड्ड में ढकेल दिया। वह भी अपना संतुलन खो बैठा था। वह अपने को भी सँभाल न सका ! नाला अब भी शोर मचा रहा था।

मैं चीख मारकर उठ बैठा। दरवाजे और खिड़कियाँ जोर से हिल रही थीं। मेरा कमरा हवा में झूम रहा था। बाहर लोग चिल्ला रहे थे—भूकम्प ! भूचाल !! भूचाल !!!

अवगुण्ठन

प्रकृति बर्फ के श्वेत आवरण में लिपटी पड़ी थी। सड़क पर, चट्टानों पर, पर्वत की चोटियों पर, बर्फ-ही-बर्फ नज़र आती थी। केवल देवदार के पेड़ ही इसकी लपेट से बचे हुए थे; जैसे उनकी चौड़ी-चौड़ी छतरियों ने उनको सुरक्षित कर रखा हो। दाहिनी ओर पहाड़ की ऊँची दीवारें थीं और बाई ओर गहरी खड्डें। सड़क पर बर्फ काटकर मार्ग बना हुआ था। वह धीरे-धीरे इस मार्ग पर चल रहा था। कहीं-कहीं मोड पर पहाड़ की ऊँची चोटियों से गिरे हुए छोटे बर्फ के कणों के ढेर लगे हुए थे। वह बल्लम से रास्ता साफ़ कर आगे बढ़ता गया। परन्तु उस तुषार में कितनी फ़िसलाहट थी। कितना सँभलकर पैर रखने पड़ते थे। थोड़ी सी चूक उसे दूर नीचे खड्ड में ले जा सकती थी। सड़क की बाई ओर देवदार का पेड़ था, जिसके साथ सूनी का चिह्न बना हुआ था। वह वहाँ जाकर रुक गया। कुछ देर बाद वह अपने बल्लम का सहारा लेकर नीचे उतरने लगा। कोई दो फर्लांग चलने के बाद वह एक विशाल मैदान में पहुँचा। हरे-हरे दयारों की ऊँची और गोल पंक्ति के बीच यह सफेद मैदान अनुपम सौन्दर्य का चित्र-सा था, जैसे प्रकृति ने उसे अपने हाथों से बनाया था। वहाँ न चिड़ियों का कोलाहल था, न जीव-जन्तुओं का पहरा। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे शताब्दियों से सभ्यता ने इस घाटी में पदार्पण न किया था, जैसे आदि काल से वहाँ निस्तब्धता

का शासन रहा था और संसार वालों के मलिन पग यहाँ न पहुँचे थे। वह बर्फ से ढकी हुई एक विशाल शिला पर बैठ गया।

उसके लिए यह नई जगह न थी। पिछले कई वर्षों से वह यहाँ आया करता था। उसे इस स्थान से विशेष प्रेम था। गर्मी हो या सर्दी. वह पहाड़ पर अवश्य आता, होटल में एक कमरा किराये पर ले लेता और दिन में एक समय इस रमणीक स्थान पर अवश्य आता। फिर वह स्थान पाँच-छः मील से अधिक दूर भी न था। वह सदैव इसी विशाल चट्टान पर बैठता। घोर वर्षा और तुषारपात उसके प्रोग्राम में बाधा न डालते।

हैट और कोट उतारकर उसने चट्टान के सफेद फर्श पर टिका दिये और बल्लम को एक ओर रख दिया। फिर वह स्वयं उसी चट्टान पर लेट गया, जैसे इस कड़ाके की सर्दी में उसके भीतर लावे का पहाड़ दहक रहा था। जैसे पहाड़ की ऊँचाई और ऋतु की तीव्रता उसके लिए अपर्याप्त थी। यहाँ लेटकर उसने आराम की गहरी साँस ली। जैसे वह केवल इसी काम के लिए इतनी दूर आया था। आकाश में बादल छाये थे। नीचे सफेद बर्फ थी. ऊपर सफेद बादल। उस पर मस्ती की दशा छा गई और आँखों में खुमार भर आया।

सफेद बर्फ पर मटियाले रंग की एक चकोरी नाप-नापकर क़दम जमा रही थी। अकेली, संगहीन, गर्दन उठाये, छाती उभारे, इठला-इठलाकर चल रही थी। न जाने वह कहाँ से इस मैदान में आ पहुँची, जैसे चित्रपट पर कोई नर्तकी पदार्पण कर रही हो। इस पक्षी-विहीन वन में वह अकेली ही घूम रही थी, शायद साथी की खोज में। उसकी चाल में सन्तोष की झलक नहीं, उद्विग्नता का आधिपत्य था। वह खोई-खोई फिर रही थी जैसे शताब्दियों से कोई भटकी हुई आत्मा मुक्तिमार्ग की खोज में फिर रही हो। चकोरी की उद्विग्नता उसकी व्याकुलता से कितनी मिलती-जुलती थी! एक की मनोवेदना और दूसरे की हृदय-पीड़ा में कितना सादृश्य था! एक पीड़ित हृदय दूसरे घाव खाये हुए

दिल के सामीप्य से कितना आनन्दित हो सकता था। उसका हृदय उसकी ओर आकृष्ट हो गया। कहीं वह उसकी अपनी चकोरी होती ! उसके हृदय में उसे प्राप्त करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। वह उत्कण्ठा के वेग से उसकी ओर बढ़ा। उसे पकड़ने के लिए उसने दोनों हाथ फैलाये। किन्तु वहाँ चकोरी न थी। उसके स्थान पर आग की राशि सुलग रही थी। आग का धुआँ धीरे-धीरे आकाश की ओर उठा। चक्कर खाती और नाचती हुई काली लकीर ऊँची होती गई। उसका दूसरा सिरा आकाश को छूने लगा। फिर जैसे धुएँ की उस काली लकीर में बेचैनियाँ पैदा होने लगीं। उसकी लहरों में नर्तन का परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। वहाँ एक स्त्री खड़ी थी, लाजवर्दी रंग की सारी पहने। उसके नेत्र अग्नि की वर्षा कर रहे थे, जैसे दहकते हुए अंगारे हों। परन्तु उन अंगारों में हरकत थी। वे उसकी ओर बढ़े आ रहे थे। उनकी गति और रूप ने उसके मन में भय उत्पन्न कर दिया। उनका ताप उसके शरीर तक पहुँच रहा था। उनका सामीप्य उसे झुलस सकता था। मृत्यु की इस निकटता ने उसके हृदय में कँपकँपी पैदा कर दी। उसका शरीर काँपने लगा। उसके हाथ-पाँव फूल गए। अंगारे उसके समीप आ पहुँचे। परन्तु उसमें भागने की शक्ति न थी। भयवश उसकी चीख़ निकल गई। साथ ही उसकी आँख खुल गई। वहाँ कुछ न था। वह पसीने से तर हो रहा था। उठकर बैठ गया।

उस नीरव वनस्थल में इस भयानक स्वप्न को देखकर उसके रोंगटे खड़े हो गए। वह शकुन्तला थी। परन्तु उसके डरने का कोई कारण न था। वह मासूम थी और उससे हानि की कोई सम्भावना न थी। ऐसे लोगों से कैसा भय ? प्रथम बार वह उसके नाम के अर्थ को न समझ सका था। उसे केवल लड्डुओं की याद थी जो उसने पेट भरकर खाये और मित्रों को खिलाये थे। लोगों की भीड़ इकट्ठी हुई थी। स्त्रियों ने गा-गाकर शोर मचा रखा था। उसकी माँ उत्साह और उमंग से इधर-उधर दौड़ी-दौड़ी फिर रही थी, जैसे प्रलय आ पहुँचा हो। रेशमी वस्त्र

पहन रखे थे, जैसे उसका अपना विवाह हो। दूसरी नारियाँ उस पर बधाई की वर्षा कर रही थीं। वह उनके उत्तर में ऊँची आवाज में कह रही थी—

"बहन, भाग्य से ही अच्छा घर नसीब होता है। लड़की पढ़ती-लिखती है। बहुत धनी घर है।"

"बहू का नाम क्या है, बहन ?"

"शकुन्तला।"

"ओह, कैसा सुन्दर नाम है !"

"अच्छा बहन, भगवान् जोड़ी को बनाये रखें।"

ये सब रीतियाँ, ये सब सगुन उसके लिए अर्थरहित थे। और शकुन्तला भी। इसके पश्चात् लोग उसके विषय में सब-कुछ भूल गए। वह आप भी भूल गया। केवल एक धुँधली-सी याद उसके हृदय में अंकित रह गई। बी० ए० की परीक्षा से कुछ दिन पहले उसने अपने विवाह की बातचीत सुनी। परन्तु क्या यह पुराने ढंग का विवाह होने वाला था जिसमें परस्पर आकृति और स्वभाव से अपरिचित होने पर भी दो इन्सानों को विवाह-शृङ्खला में बाँध दिया जाता है ? लड़की का एक धनी कुल से सम्बन्ध रखना कोई बड़ी बात न थी। धन का प्राचुर्य, मूर्खता और कुरूपता के न होने का प्रमाण न था। क्या नाम था, शकुन्तला ! सुन्दर तथा ऐतिहासिक। कालिदास की कल्पना की शकुन्तला अनुपम सौन्दर्यमयी थी—अप्सराओं को लजाने वाली। काश, उसकी अपनी शकुन्तला कवि की शकुन्तला के तुल्य हो। नाम का सादृश्य तो था, परन्तु रूप के सादृश्य के बिना नाम का सादृश्य किस काम का ? अपने ही मन को सन्तोष न था, मित्रों को कैसे हो ? जब नरेश पूछता, "भाई, कोई भाभी की बात सुनाओ।" तो वह कहता, "मैं स्वयं उसकी बात सुनना चाहता हूँ।"

"चिट्ठी-पत्री नहीं आती ?"

"चिट्ठी-पत्री ? कैसी भोली बातें करते हो ? क्या यह सम्भव हो

सकता है ?"

"क्यों नहीं ? हम तो मृदुला को बराबर पत्र लिखते हैं। कभी-कभी मुलाकात भी कर लेते हैं।"

नरेश की यह बात विश्वास के योग्य न थी। अनुपम रहस्य व्यक्तीकरण, प्रबल भेद-प्रकटन। पर विचार अच्छा था। वह क्यों न पत्र-व्यवहार आरम्भ करे। आखिर नरेश कोई आकाश से तो न उतरा था और न उसकी मृदुला। वह भी अवश्य शकुन्तला को एक पत्र लिखेगा। चलो, एक तो निर्णय हुआ। परन्तु पत्र का आरम्भ कैसे करना होगा ? 'मेरी प्यारी शकुन्तला ?' परन्तु यह तो बिलकुल साधारण है। तो फिर क्या ठीक होगा ? अँगरेज़ों की तरह क्यों न लिखा जाय, 'मेरी प्यारी बिल्ली।' परन्तु बिल्ली आकर्षक नहीं। यह क्यों नहीं, 'मेरी प्यारी मृगनयनी।' खूब ! यही ठीक रहेगा। वह इस उपनाम को पढ़कर कितनी प्रसन्न होगी। आनन्द से नाच उठेगी। यदि उसकी आवाज़ उसकी माँ के कानों तक पहुँच गई तो वह अवश्य पूछ बैठेगी, 'बेटी शकुन्त् क्या बात है ?' वह कहेगी, 'कुछ भी तो नहीं मम्मी। स्कूल में ड्रामा है न। उसका रिहर्सल कर रही हूँ।' तब वह कमरा बन्द कर पत्र पढ़ना आरम्भ करेगी, 'मेरी प्यारी मृगनयनी ! हमारी सगाई हुए कितने वर्ष व्यतीत हो गए ! तब हम बिलकुल बच्चे थे, सगाई के शब्द से भी अनभिज्ञ। लेकिन अब हम बड़े हो गए हैं, पूरे जवान, और शीघ्र ही एक नये नाते में बाँध दिये जायँगे, जो जीवन-भर रहेगा। परन्तु सम्बन्ध के महत्त्व के सम्मुख हमने एक-दूसरे को देखा तक नहीं है। यह सत्य है कि पुरानी रूढ़ियाँ इस बात की आज्ञा नहीं देतीं। किन्तु भला इससे बढ़कर कोई हास्यास्पद बात हो सकती है ?' परन्तु इससे क्या मतलब निकलेगा ? यह भी तो साधारण बात है। लेकिन इनका प्रयोजन उसे प्रभावित करना है भी तो नहीं। वह तो उससे केवल एक बात करना चाहता है, चिट्ठी-पत्री के विषय में। तो उसे सीधा क्यों न लिख दे ? मगर यह भी तो सुगम नहीं। क्यों न वह शहर जाकर उससे मिल ले ? लेकिन कैसे ? कई

लोग भेस बदलकर अपनी प्रेमिका को देख लेते हैं। है तो ठीक, परन्तु यह काम भी तो सहज नहीं। यदि किसी को इस बात का पता चल गया और उसकी पोल खुल गई तो ? कितनी हेठी होगी उसकी ! और यदि उसके माता-पिता को पता चल गया तो ? यह भी हो सकता है कि पहले से मुलाकात का कोई स्थान ठीक कर लिया जाय। स्टेशन पर, किसी बाग में अथवा स्कूल के भीतर ही क्यों न चला जाय ? हैड मिस्ट्रेस से कह दे कि वह उसका चचेरा भाई है। वह शकुन्तला से इस बात का समर्थन करने के लिए कहेगी। यदि वह शरमा गई तो सब किये-कराये पर पानी फिर जायगा। यह भी तो हो सकता है कि इस बात को अपराध ख्याल करके मुख्याध्यापिका पुलिस को सूचित कर दे। तब कितनी बदनामी होगी ! हाँ, याद आया। एक और साधन भी तो है। शकुन्तला की किसी सहेली का पता लगाकर उसके भाई के साथ मित्रता गाँठी जाय। मुलाकात का अड्डा उसके ही घर को बनाया जाय। वहाँ बात करने का कितना खुला अवसर मिलेगा। वहाँ उसकी प्रथम भेंट होगी—अकेले में। वह उसकी ओर भाव-भरी निगाहों से देखता हुआ कहेगा 'नमस्ते'। वह हाथ जोड़कर उत्तर देगी 'नमस्ते'। लज्जावश उसकी पलकें बोझिल हो जायँगी। उसके गोरे-गोरे गालों पर लाली की लहर दौड़ जायगी। उस समय वह उसके अनुपम रूप के सम्बन्ध में सौन्दर्यमय काव्य की ऐसी झड़ी लगा देगा, जिसे सुनकर वह तड़प उठेगी। परन्तु उसके लिए भी तो एकान्त में एक युवती से बात करने का यह पहला ही अवसर होगा। कहीं वह स्वयं ही न लज्जित हो उठे और एक शब्द भी उसके मुख से न निकल सके ! कितनी बुरी बात होगी यह ! वह अपने मन में क्या सोचेगी ? उसके हृदय पर कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा ! नहीं, वह अवश्य बोलेगा। 'नमस्ते' के पश्चात् वह कहना आरम्भ करेगा, 'आप से मिलने की कितनी उत्कण्ठा थी। मैंने सोचा कि शायद पूरी ही न हो'। वह पूछेगी, 'भला ऐसा क्यों सोचा आपने ? यदि वह ऐसे कह उठी ? ओह, कितनी भूल हुई ! इस वाक्य का तो

कुछ और ही अर्थ निकल आया। नहीं, ऐसे कहूँगा, 'प्रबल आकांक्षा थी कि विवाह से पूर्व एक बार दर्शन कर सकूँ। परमात्मा को धन्यवाद है कि मुझे निराश नहीं होना पड़ा।' इस बात का भला वह क्या उत्तर देगी ? उसकी आँखें तो धरती पर गड़ी होंगी। परन्तु वह उसका आशय तो पढ़ ही सकेगा। फिर वह उसे बतायेगा कि ब्याह से पहले उन्हें एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और अपने-आपको एक-दूसरे के अनुसार ढाल लेना चाहिए। यह बात दोनों के लिए हितकारी सिद्ध होगी। जीवन में कितने उथल-पुथल आवेंगे ! कितनी सम याओं का सामना करना होगा ! उनका वीरता से मुकाबला करने के लिए दम्पती का एकमत होना कितना आवश्यक है। इसलिए यह उचित है कि दोनों परस्पर पत्र द्वारा विचार-विनिमय करते रहें। कितनी सहज है सारी बात। वह यह सब बिना किसी हिचकिचाहट के कह देगा। वह सिर हिलाकर अनुमोदन करेगी। परन्तु एक बाधा तो रह जायगी। उसे पत्र किस पते पर लिखना होगा। क्यों न उसकी सखी के मारफत लिखा जाय ? परन्तु इस बात का क्या निश्चय है कि वह सहेली स्वयं उन पत्रों को न पढ़ा करेगी। नहीं, वह सीधा उसे ही पत्र लिखेगा। उसमें एक परिवर्तन कर लिया करेगा। अपने नाम को किसी लड़की के नाम से बदल लेगा। कौनसा नाम ठीक होगा ? कोई सही। इसमें है ही क्या ? सरला, सुशीला, विमला। पर ये तो सब साधारण हैं। तो चलो हेम-लता ही सही। पत्र के अन्त में वह लिखा करेगा—

'तुम्हारी अपनी, अथवा तुम्हारी बलाएँ लेनेवाली हेम।'

पत्रों द्वारा वह उसे पूर्णतया शिक्षित कर देगा। पुस्तकें तो वह स्कूल में पहले से पढ़ती होगी। अब वह उसकी विद्यानिधि में असाधारण वृद्धि करेगा। उसके पत्र राजनीतिक परिस्थितियों के दर्पण होंगे। वह उनमें देशी तथा अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं पर टिप्पणी करेगा। नई पुस्तक, जिनके विषय में उसने स्वयं पढ़ा और सुना था, उसे सुनायेगा। उसके पत्रों में साहित्य का वर्णन विशेष रूप से अनिवार्य है। साहित्य

का जीवन से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है ! भारतीय साहित्य की उन्नति किस प्रकार हुई, विदेशी साहित्य का भारतीय साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा और साहित्य ने भारतीय संस्कृति तथा राजनीति पर कैसे और क्या प्रभाव डाला, इन सब बातों का वर्णन वह अपने पत्रों में करेगा। वह स्वयं कितना कुशाग्रबुद्धि है ! राजनीति, विद्या और साहित्य में कितना दक्ष है ! कॉलेज में कितने पुरस्कार जीतता था। तो उसकी जीवनसंगिनी क्यों न उसके बराबर रहे ? वह क्यों न उसकी विद्यानिधि की हिस्सेदार बने ? हाईस्कूल में भला कितने अवसर मिलते हैं, जब कि छात्राओं को विस्तारपूर्वक विद्या दी जा सके। वहाँ तो विद्याध्ययन केवल पुस्तकों पर निर्भर होता है और वे भी केवल कोर्स की पुस्तकें। जो बातें वह स्कूल में नहीं सीख सकती, उन्हें उसके पत्रों से सीख जाया करेगी। और उसके लिए यह सब कठिन भी नहीं है। जो कुछ वह स्वयं पढ़ेगा, उसका सारांश सुगम भाषा में उसे समझाता रहेगा। एम० ए० में जाकर वह अंग्रेजी के विषय को लेगा। इससे उसे और भी लाभ होगा। उसे साहित्य का गहरा अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होगा और इससे वह अपनी शकुन्तला को भी लाभ पहुँचा सकेगा। तब तक वह कॉलेज में प्रवेश कर लेगी। उसका दृष्टिकोण विस्तृत हो जायगा। वह कठिन विषयों को अच्छी तरह समझ सकेगी। लेकिन क्या यह नहीं हो सकता कि वह उसी नगर के किसी कॉलेज में दाखिल हो जाय ? तब तो उसे देखने के कई अवसर हाथ लगेंगे। फिर वह किसी-न-किसी बहाने उसके कालेज हो ही आया करेगा। इसके लिए कुछ दुविधाओं को पार करना होगा। होस्टल के चौकीदार को घूस देनी होगी और साथ ही माई को। लोग इन माइयों से कितना लाभ उठाते हैं ? 'बी' सेक्शन का मूलराज इन बातों में कितना घाघ है। माइयाँ जैसे उसके इशारे पर नाचती हैं। रिश्वत देना भी तो एक विशेष गुण है। प्रत्येक व्यक्ति इसमें निपुण नहीं हो सकता। अनाड़ी तो मुँह की खाता है। मूलराज तो लड़कियों को होस्टल से बाहर ले आता है। मूलराज के कमरे में

उसने स्वयं अपनी आँखों से मोहनलाल कॉलेज फ़ार गर्ल्स की चार लड़कियों को बैठे देखा था। भला माइयों की सलाह और साजिश के बिना यह कैसे सम्भव हो सकता है ! लेकिन यदि शकुन्तला को भी कोई मूलराज मिल जाय तो ? नहीं, नहीं। यह नितान्त असम्भव है। वह कदाचित् ऐसी नहीं हो सकती। वह भी तो मूलराज के दृष्टिकोण से मतभेद रखता था। वह उसकी इस नीति के बहुत विरुद्ध था। लड़कियों को इस प्रकार अपने मकान पर लाना आचारभ्रष्टता नहीं तो और क्या है ? स्त्री-शिक्षा पर एक करारी चोट ! कॉलेज की प्रिंसिपलों और मैट्रनों को खुली चुनौती ! किन्तु उसे इससे क्या। भाड़ में जायँ ये सब लोग, मूलराज और उसकी सहेलियाँ। उसे तो अपनी शकुन्तला से प्रयोजन है। लेकिन रिश्वत देना भी तो अनुचित है। वह क्यों न उसकी प्रिंसिपल के पास जाय और उसके आगे सारी बात खोल दे। आखिर वह उसके साथ रहनेवाली, उसकी होनेवाली पत्नी है—जीवन-भर उसके साथ रहनेवाली। और फिर वह उसे कहीं बाहर भी नहीं ले जा रहा। केवल कॉलेज या होस्टल ही में मिलेगा और वह भी कुछ देर के लिए। उतनी ही मुलाकात उसके लिए यथेष्ट होगी। परन्तु प्रायः ये मुख्याध्यापिकाएँ शक्की स्वभाव की होती है। प्रिंसिपल उसको इस प्रकार अपने मंगेतर से मिलने की आज्ञा न देगी। अतः मुख्याध्यापिका के पास जाने से उसका कार्य न हो सकेगा। उसे माई की ही सेवा को ग्रहण करना होगा। बस इतनी-सी बात तो पाप नहीं मानी जा सकती। पाप तो तब है, जब वह किसी लड़की को कुदृष्टि से देखे और सीमा से बाहर जाय। अपनी शकुन्तला से मिलना, चाहे घूस द्वारा ही क्यों न हो, कोई बुरी बात नहीं। यह अवश्य है कि उन मुलाकातों में वह उससे देर तक न मिल सकेगा। परन्तु एक बात तो होगी। वह घर से एक लम्बा-चौड़ा पत्र लिख लाया करेगा। इस पत्र में वह अपने हार्दिक उद्गारों को एकत्र करके रख दिया करेगा। उस पर अपना अथाह प्रेम प्रकट करने के लिए वह अंग्रेजी कवियों की कविता से सुन्दर पद उद्धृत कर

लिया करेगा—बिलकुल उसी प्रकार, जिस प्रकार राजेन्द्र प्रमिला को पत्र लिखते समय वर्ड्सवर्थ, कीट्स, और शेली से उद्धृत किया करता था। पत्र सुनाते समय राजेन्द्र कितना झूमता था, जैसे उसके अपने बनाए पद्य हों। भला बेचारी प्रमिला इन अंग्रेजी कवियों को क्या समझेगी? एक दिन उसने व्यंग्यपूर्वक राजेन्द्र से कह दिया था और वह कितना सटपटाया था। दण्ड के तौर पर, भविष्य के लिए उसने पत्र दिखाना ही बन्द कर दिया था, यद्यपि सप्ताह में तीन पत्र लिखा करता था। वह केवल एक ही पत्र लिखा करेगा, जिसमें उत्कृष्ट भाव, ऊँचे विचार और राजनीति का वर्णन होगा। एक दिन वह इन पत्रों को छपवायेगा। उत्तम और उचित शीर्षक ढूँढने के लिए उसे कितना सोचना होगा। क्या 'प्रेम की पूँजी' नाम ठीक न रहेगा? परन्तु कोई चटपटा-सा नाम होना चाहिए। खैर, तब तक कोई न कोई नाम उसे मिल ही जायगा।

सबसे बड़ी अड़चन तो पहली भेंट की थी। उसके बाद तो कोई-न-कोई स्थायी ढग सोचा ही जा सकता है। क्यों न वह उसका ट्यूटर बन जाय? शकुन्तला से उसके पिता को लिखवा दे कि अंग्रेजी में कमज़ोर होने के कारण उसे एक ट्यूटर की आवश्यकता है। उसके पिता यह कार्य मुख्याध्यापिका के सुपुर्द कर देंगे। कोई अध्यापिका इसके लिए तैयार न होगी। उन्हें भला आवश्यकता ही क्या है? वे अनावश्यक सिर क्यों खपाती फिरें? उधर वह स्वयं प्रिंसिपल के पास जाकर नम्र भाव से अपनी दरिद्रता का बहाना करके किसी ट्यूशन की माँग करेगा। शकुन्तला के ट्यूशन की बात ताजा किस्सा होने के कारण प्रिंसिपल शायद उसे ही यह काम सौंप दे। पर कहीं ऐसा न हो कि वह उसे किसी और लड़की की ट्यूशन सौंप दे। तो भी कोई हर्ज नहीं। वह कॉलेज तो जायगा ही। उस लड़की के द्वारा वह शकुन्तला से मेल-जोल बढ़ायेगा। बाद में शकुन्तला प्रिंसिपल से प्रार्थना कर सकती है कि वह भी उससे पढ़ना चाहती है। उसे पढ़ाना कितना आनन्दमय होगा!

उन घड़ियों की प्रतीक्षा, जो उसे उसके निकट व्यतीत करनी होंगी, उसके हृदय में मधुर गीत की तान छेड़ देगी। उसके हृदय की वीणा के एक-एक तार से निकले हुए सहस्रों गीत मधुर गूँज पैदा कर देंगे। इन गीतों की रसीली तान संसार को मोहित कर देगी। उसके समीप व्यतीत किये गए उन क्षणों की स्मृति जीवन के कर्कश अनुभवों और निष्ठुर यथार्थताओं में माधुर्य भर देगी। प्रेम और सौंदर्य का पारस्परिक मेल, प्रणय और प्रीति की लहरों को उत्पन्न करेगा। वायुमण्डल में छाई हुई घृणा और ग्लानि की लहरों और इन लहरों के बीच संसार को कँपा देने वाला एक घोर संघर्ष होगा, तब वायुमण्डल को चीरती हुई एक ऊँची आवाज ललकार कर कहेगी—

"ऐ कपट और छल के मलदूषित कीटाणुओ ! हिंसा और बर्बरता के रक्त-पिपासित भेड़ियो ! बल और शासन के भूखे जन्तुओ ! घृणा और कुत्सा के साकार पिशाचो ! तुम नवीन सभ्यता को 'उन्नतिकाल' के नाम से पुकारते हो ? क्या तुम्हारे निकट उन्नति और अवनति, उत्पादन और उत्सादन में कोई अन्तर नहीं ? क्या तुम प्रस्तरयुग के मनुष्य को केवल इसलिए तिरस्कार की दृष्टि से देखते हो कि वह आधुनिक विज्ञान का अनुयायी होकर मानवता के विस्तृत परिमाण में विध्वंस करने की योग्यता न रखता था ? ऐ कीटाणुओ ! ऐ भेड़ियो ! ऐ जन्तुओ ! ऐ पिशाचो ! मेरी ओर देखो। मुझसे कुछ सीखो।"

परन्तु यदि शकुन्तला ने किसी सहेली को यह नाटक सूचित कर दिया तो ? ये लड़कियाँ कभी किसी रहस्य को छिपा कर नहीं रख सकतीं। ये पेट की हलकी होती हैं। इस मधुर भेद को वह कभी अपने हृदय में दबाए नहीं रख सकेंगी ! बात एकदम सारे कालेज में फैल जायगी। भेद खुलने के बाद जब कालेज जायगी तो लड़कियों के दल छेड़ेंगे। तरह-तरह के व्यंग्यपूर्ण नाम उसके रक्खे जायँगे। यह भी तो हो सकता है कि वे उसके सामने ही शकुन्तला पर आवाजें कसें और उसकी नाक में दम कर दें। फिर इस बात की भनक प्रिंसिपल के कानों तक अवश्य पहुँचेगी।

वह मन में क्या सोचेगी ? खैर वह तो ट्यूशन बन्द कर देगा। परन्तु उसका फल तो शकुन्तला को भोगना पड़ेगा। प्रिंसिपल उसे आड़े हाथों लेगी। उसके पिता को बुलवायेगी। परन्तु इससे क्या होगा ? वह बेचारा क्या बिगाड़ सकेगा। शकुन्तला को थोड़ा-बहुत कोस लेगा। परन्तु एक प्रकार से उसे सांत्वना भी होगी। अच्छा हुआ, यदि दोनों ने एक दूसरे को देख लिया। कहीं शकुन्तला की मुख्याध्यापिका मूर्खता न कर बैठे और इस मामले की रिपोर्ट उसके अपने प्रिंसिपल के पास न भेज दे। फिर तो बुरा होगा। शत्रुओं को उसे बदनाम करने का सुअवसर प्राप्त होगा। मगर वह इसे सहन क्यों करेगा ? यह उसका अपना निजी मामला है। वह उसकी अपनी मंगेतर है, किसी दूसरे की नहीं। और ऐसी खबरों को रोकने का एक ही उत्तम उपाय यह है कि आरम्भ ही में उन्हें रोक दिया जाय। ज्यों ही कोई विद्यार्थी इस बात का जिक्र छेड़ेगा, वह उस पर पिल पड़ेगा। घूसों से उसकी मरम्मत कर देगा। यदि सम्भव हुआ तो एक-दो दाँत भी तोड़ देगा और मुख पर घाव भी कर देगा, जिससे दूसरों को चेतावनी रहे। फिर भला किसकी मजाल कि इस बारे में ज़बान तक हिला सके। प्रिंसिपल भी तो आखिर मूर्ख नहीं है। वह भला किसी के निजी मामलों में क्यों टाँग अड़ायेगी ? वह भी आखिर स्त्री है, पत्थर नहीं। प्रेम कोई अप्राकृतिक चीज़ तो है नहीं। प्रेम का भाव मनुष्यों में नहीं तो क्या चट्टानों में होगा ?

इन मुलाकातों का एक लाभ यह होगा कि वह न केवल शकुन्तला को देख सकेगा, बल्कि उससे सम्बन्ध भी बढ़ा सकेगा। उनके गृहस्थ जीवन पर इस बात का कितना अच्छा प्रभाव पड़ेगा ? एक ही नौका में सवार उन दोनों को जीवन-नदी की तेज़ लहरों पर बहना होगा। नदी के भयावने थपेड़ों और तूफानी लहरों का सामना करना होगा। उन्हें जीवन की दुर्घटनाओं से वीरता के साथ लड़ना होगा। गृहस्थी को चलाने के लिए पति और पत्नी का एकमत होना कितना आवश्यक है ! गाड़ी दो पहियों ही से चल सकती है और दोनों पहिये एक-से सबल

चाहिएँ। एक कमजोर और निकम्मा पहिया गाड़ी को बेकार कर देता है। लेकिन उसकी शकुन्तला तो भद्दी नहीं हो सकती। वह तो सौन्दर्य की रानी होगी। जब वह स्वयं रूपवान् है तो उसकी अपनी पत्नी क्यों रूपवती न होगी। आखिर वह अपने माता-पिता की पसन्द की हुई है। उसके माता-पिता अपने पुत्र से ही कैसे अन्याय कर सकते हैं? मगर यह विचित्र बात है कि घर पर शकुन्तला का कभी बखान नहीं होता। क्यों न वह अपनी माँ से इसकी चर्चा छेड़े। लेकिन कहीं वह मन में यह न सोचे कि कितना निर्लज्ज लड़का है। मगर लज्जा किस बात की? किसका विवाह नहीं हुआ? माँ का भी तो हुआ था। फिर जब शकुन्तला उसकी जीवन-संगिनी है तो उसके विषय में सब कुछ जान लेना भी तो आवश्यक है। गाय-भैंस का सौदा करते समय भी कितनी सावधानी से काम लिया जाता है। फिर यह तो विवाह का मामला है। लेकिन कितनी मूर्खता है कि इस बीसवीं शताब्दी में भी पुरातन रीतियों और रूढ़ियों को जारी रखा जाता ह। एक ओर उच्च अंग्रेजी शिक्षा और दूसरी ओर सड़े रिवाज। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कितनी निर्दयता से कुचला जाता है। जब तक व्यक्ति के महत्त्व को न समझा जाय, राजनीतिक स्वतन्त्रता के महत्त्व को कैसे जाना जा सकता है? परन्तु क्या उसका अपना यह कर्तव्य नहीं कि वह अपने अधिकारों की स्वयं रक्षा करे? संसार की महान् क्रान्तियों का उसने अच्छी तरह अध्ययन किया ह। वह जानता है कि समाज में विद्रोह का झंडा ऊँचा करने वाले देवता नहीं, मनुष्य ही थे। विद्या और विप्लव में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। फिर वह क्यों न इतिहास से पाठ सीखें और अपनी स्वतन्त्रता के लिए आवाज ऊँची करें। वह मां से स्पष्ट कह देगा कि शकुन्तला को देखना चाहता है। बिना देखे वह विवाह के लिए सहमत न होगा। यदि माता-पिता को यह बात स्वीकार नहीं तो न सही। उसे भी यह सौदा मंजूर नहीं।

और जब उसने मां से इसका वर्णन किया तो वह हँस दी। भला

ऐसी-वैसी लड़की को वे कैसे पसन्द कर सकते थे ? एक दूर के नाते की बहिन ने लड़की को अपनी आँखों से देखा था और वह बिलकुल सन्तुष्ट थी। लड़की में कोई त्रुटि न थी। फिर उसका पिता कितना धनाढ्य था ! कितना दहेज मिलने की सम्भावना थी ! मगर क्या वह दहेज के साथ विवाह कर रहा था अथवा लड़की के साथ ? क्या माँ स्वयं लड़की को न देख सकती थी। माँ आश्चर्य की दृष्टि से उसकी ओर देखकर बोली, "भला यह भी सम्भव हो सकता है ? फिर उत्तम वंश की स्त्रियों के लिए ? शकुन्तला के माता-पिता इस बात को कैसे स्वीकार करेंगे ? उसके भी तो बहिन थी। यदि सगाई से पहले उसकी ससुराल वाले देखने के लिए हठ करें तो ? क्या वे लज्जा से गड़ न जायँगे ?" मगर वह हैरान था। भला इतनी-सी बात में लज्जा की क्या सम्भावना थी ? यदि उसकी बहिन को कोई देख लेगा तो कौनसा भूचाल आ जायगा ? क्या जिन लोगों की बहिनों को किसी ने देखा है, वे सब बदनामी के शिकार हो गए हैं ? यदि सगाई से पहले लड़की को देखने में बदनामी है तो विवाह के बाद तो सम्मान का एक अंश भी सुरक्षित नहीं रह सकता। यदि सम्बन्धी इस दोष को क्षमा-योग्य न समझें तो न सही। उनकी क्षमा की आवश्यकता भी क्या है ? उनसे बिगाड़ करना मुफ्त के कष्ट से बचने का बहुत अच्छा ढंग था। लेकिन माँ ने उसे बताया कि किसी दूसरे को उसकी मंगेतर के विषय में झूठ बोलने की क्या आवश्यकता थी ? बात तो वैसे ठीक थी।

रूपवती स्त्री के बिना जीवन में आनन्द ही कहाँ ? कितनी रोमांचक होती है विवाह की प्रतीक्षा भी ! कितने दिन पहले से तैयारियाँ होने लगेंगी। वस्त्र और आभूषण बनवाये जायँगे। निमन्त्रण-पत्र भेजे जायँगे। मित्र-मण्डली विवाहोत्सव की शोभा को बढ़ायेगी। कदाचित् प्रिंसिपल महोदय सम्मिलित होने से इन्कार कर दें। काश, उसके माता-पिता उस 'प्रिंसिपल' की बात मान लेते और उनके मित्र टण्डन साहब की लड़की का नाता स्वीकार कर लेते। कितनी सलोनी थी !

परन्तु इससे क्या ? संसार सौन्दर्य से भरा पड़ा है। मनुष्य किस-किस के लिए आहें भर सकता है। प्रोफेसर राघवम् की छोकरी भी तो कला की खूबसूरत थी और डा० नित्यानन्द की लड़की ? ओह कैसी बड़ी-बड़ी आँखें ! लचकती हुई कमर ! मोतियों से दाँत ! लेकिन इससे क्या ? उसे शकुन्तला से प्रयोजन था। उसे केवल उसका सलोनापन पसन्द था। कितनी आशाएँ लिये वह प्रथम रात्रि को उसके पास जायगा ? वह लज्जा के बोझ से दुहरी होकर मुँह को घूँघट में छिपाने का असफल प्रयत्न करेगी। फिर वह धीरे-धीरे घूँघट को उठायेगा और उसमें होगा एक सौन्दर्यमय मुखड़ा, जिसमें चाँद की चाँदनी, तारों का आलोक और फूलों का सौरभ भरा होगा।

"ओ ! हुशियारे !" अकस्मात् कोई सड़क पर चिल्ला उठा। वह चौंक पड़ा। अचानक उसे अपने वातावरण की याद आई। वही विशाल शिला और दयार के पेड़, नीचे सफेद बर्फ, ऊपर सफेद बादल। चकोरी का वहाँ चिह्न भी न था। परन्तु उसके पाँव के चिह्न बर्फ पर अब भी बने थे। उसने अपनी आँखों को ज़ोर से मला। चकोरी शायद स्वप्न की बात थी, परन्तु शकुन्तला यथार्थ थी। वह उसे कभी न भूला था। कई जन्मों में न भूल सकता था। शादी की एक-एक बात उसके मस्तिष्क में अंकित थी। प्रयत्न करने से भी वह उन्हें न भूल सकता था। कितनी शान से वे बरात लेकर ससुराल पहुँचे थे। लोगों की आँखें सेहरों से सजे हुए वर-वधू पर लगी हुई थीं। उसके मित्र भी उसके संग थे। एक-से-एक रूपवान् और जवान ! परन्तु लोगों की दृष्टि केवल उसी पर लगी थी। उनकी बातें उसके हृदय में गुदगुदी पैदा कर रही थीं। स्त्रियों की खुसर-फुसर की ध्वनि उसके कानों में पड़ती—

"कितना रूपवान् है !"

"शकुन्तला के भाग्य खुल गए।"

"बहन, क्या पास है ?"

"सोलह दर्जे।"

"सोलह !"

"और शकुन्तला ?"

"आठ।"

"अर्धांगिनी जो ठहरी। सब चीज आधी।"

और एक ऊँचे अट्टहास के बीच उनकी कानाफूसियाँ दब गईं।

जब रात्रि को शकुन्तला का पाँच साल का भाई उसे एकान्त में मिला तो उससे न रहा गया और वह पूछ ही बैठा—

"शिशुपाल, किसका विवाह हो रहा है ?"

"तुम्हारा और दीदी का।"

"तुम्हारी दीदी बहुत सुन्दर होगी ?"

"बहुत !"

"तुम्हारे पिताजी क्या करते हैं ?"

"दुकानदारी।"

जैसे उस पर वज्र टूट पड़ा। क्या वह एक दुकानदार की लड़की से विवाह कर रहा है ? धन ही संसार में सब-कुछ नहीं। धनाढ्य होते हुए भी इन लोगों के जीवन का आदर्श निकम्मा और ओछा रहता है। शिष्टता, सत्यता और आचार इनके जीवन को छू नहीं पाता। मित्रों के सामने वह भला यह बात कैसे कहेगा ? परन्तु इससे क्या ? यदि शकुन्तला शिक्षिता और लावण्यमयी है तो उसके माता-पिता से उसे क्या प्रयोजन ?

जब रोती हुई वधू को डोली में बिठाया गया था तो वह झुँझला उठा था। यह क्या वाहियात है ? विवाह के दिन बाजे और आनन्द के बीच ऊँची आवाज में रोना कहाँ की शिष्टता थी ? "माता-पिता से बिछुड़ते समय रोना आ ही जाता है।" आ ही जाता है ! जैसे मौत के मुँह में जा रही है। पति न हुआ यमराज हुआ ! ससुराल न हुई यमराज का घर ठहरा ! कितना स्वाँग भरती हैं। चूँकि लड़कियाँ ऐसा करती आई हैं, वह क्यों न करे ? नक्काल कहीं के ! प्रत्येक बात

पर लोगों का भय, लोकमत का डर। शायद साँस लेना न बन्द कर दें। लोग क्या कहेंगे! फिर डेढ़ हाथ का घूँघट! यदि मैके में खुले मुँह फिरा जा सकता है तो ससुराल जाकर क्या साँप के डसने का भय है? क्या वहाँ के लोग भूखे भेड़िये हैं, जो बहू को खुले मुँह देखकर हड़प कर जायँगे। "लज्जा भी तो होती है?" क्या खूब! क्या मैके में निर्लज्जता से रहती हैं! भला कोई दलील भी हो। हर बात में भेड़िया धसान! इतने मनुष्य सब भेड़ों के रेवड़ ही तो हैं! आँखें बन्द किये पुराने पदचिह्नों पर चलने वाले। साधारण-सी हिम्मत का काम पड़ा और चीख उठे 'म्हें!'

जब वह प्रथम रात्रि को उसके कमरे में गया तो उसने उसे घूँघट में लिपटी देखा। उठकर स्वागत करने की जगह वह लज्जा संकोच से उलझ रही थी। उसके शरीर में जैसे आग लग गई। उसने चाहा कि घूँघट को उलट और दुपट्टे को फाड़कर फेंक दे। परन्तु प्रथम भेंट ही में वह इतना निष्ठुर न होना चाहता था। अपने ऊपर संयम करके, हृदय को थामते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़कर उसने घूँघट को उठा दिया।

ठन····नन···नन····एकदम जैसे हृदय के मृदंग पर एक करारी थाप पड़ी। घूँघट के नीचे आकृति थी, जिसके कपोल अवश्य थे, परन्तु उनमें सेब की लाली नाम को भी न थी। उनका रंग उसके सिर के बालों का-सा था। दाँत थे, परन्तु कवि-कल्पित मोती की लड़ी नहीं। ऊपर वाले दाँत बाहर को उभरे और निकले हुए! नीचे के दाँतों पर इस प्रकार जमे हुए, जैसे चीते के दाँत शिकार की गर्दन पर। जैसे एक भयानक स्वप्न ने उसे जगा दिया था। कितने परिश्रम से, हृदय का रक्त पिलाकर, उसने आकांक्षाओं को पाला था। उन अभिलाषाओं की पूर्ति पर उसने भविष्यत् आनन्द के विशाल और सौन्दर्यमय भवनों की रचना के सुनहले स्वप्नों को पाला था। उसकी आकांक्षाएँ पिघलती मालूम हुईं और उस भवन के पत्थर गिरते हुए। आँधी का एक प्रबल बवंडर उसके सुनहले स्वप्नों को दामन में सँभाले आकाश की ओर भागा जा रहा था।

इसके कई वर्ष पश्चात् उसने शकुन्तला की शक्ल तक नहीं देखी। पहली भेंट का खुमार ही एक अरसे तक नहीं उतरा। उसे कुछ खबर न होती कि वह ससुराल में है अथवा मैके में। न उसे इस बात के जानने की आवश्यकता थी। वह घर पर सोता भी न था। नगर से बाहर वाली कोठी में पड़ा रहता। खाना भी वहीं मँगवा लेता। माँ उसे समझाती और पूछती—

"बेटा, तुम्हें क्या हो गया है ?"

"अभी तो कुछ नहीं हुआ माँ ?"

"बेटा, वंश-मर्यादा का तो ध्यान करो !"

"हाँ ! केवल वही कर रहा हूँ, और कुछ नहीं।"

वह चुप हो जाती। उसके हृदय की गहराइयों में पैठकर वह उसकी थाह न ले सकती थी। केवल बड़े-बड़े आँसू उसके गालों पर बह निकलते। अच्छा होता जो वह अन्धा होता और उन आँसुओं को न देख सकता। उसके इन आँसुओं ने ही उसकी सुख-वाटिका में आग लगाकर उसे झुलसा दिया था। केवल प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए उसने उसकी खुशियों को दल-मलकर ऐसा निचोड़ा कि उनमें एक बूँद भी बाकी नहीं रही थी। अब तो बाग उजड़ चुका था। वहाँ नये बीज बोये जाने की आशा ही न थी। न पौदों और पेड़ों के उगने, फूलों और फलों के आने की उम्मीद थी। काश उसे मदिरा पीने की लत होती और सुरा के प्याले में वह अपने दुख को भुला सकता।

समय वेग से वीतता रहा। पिता की मृत्यु हो गई। माता परलोक सिधार गईं। परन्तु उनकी मौत का शोक उसे छू तक न सका। आँसुओं की एक बूँद तक उसकी आँखों से न निकली। किसी का भी शोक उसे न सताता। जब वह पत्रों में पढ़ता कि कराची के समीप जहाज़ डूबने से एक हजार नर-नारी मौत का शिकार हो गए तो वह लेशमात्र दुखी न होता। उसके लिए ऐसी खबरों का कोई महत्त्व न था। उसकी दृष्टि में मनुष्यों और चूहों के मरने में कोई अन्तर न था।

जब उसे पता चला कि शकुन्तला बीमार रहती है तो इससे वह बिलकुल प्रभावित नहीं हुआ। बीमारी तपेदिक में परिणत हो गई और डाक्टरों ने उसे किसी पर्वतीय स्थान पर ले जाने का परामर्श दिया। उसने उसे नौकर के साथ पहाड़ पर भेज दिया—प्रेमभाव से नहीं, उस पर दया करके। हवा बदलने का कोई फल न हुआ। उसकी नाजुक हालत की खबर ने उसे वहाँ पहुँचने पर विवश किया। वहाँ जाकर वह उसकी सुश्रूषा के योग्य न बन सका। सवेरे कलेवा करने के बाद वह घूमने निकल जाता और प्रतिदिन उसी विशाल चट्टान पर आकर बैठ जाता। वहाँ घण्टों बैठा रहता। प्रायः उसे खाने-पीने की भी सुध न रहती! ऊँचे-ऊँचे दयार, गीत-भरे नाले, संगीत-भरे झरने कितने प्रिय होंगे! यहाँ का एकान्त कितना आकर्षक था! मार्ग में वह एक स्थान पर आकर रुकता। सूली के चिह्न के पास। बहुत देर तक उसकी निगाहें उससे उलझी रहतीं। बस्ती से दूर, इन वनों से भरे पर्वत पर, दयार के ऊँचे पेड़ों के साथ लगी हुई उस सूली के चिह्न को देखकर वह विस्मित हो उठता और इसके महत्त्व को समझने का प्रयत्न करता। उसे इससे प्रेम हो गया था।

एक सन्ध्या को जब वह लौटा तो शकुन्तला इस संसार को छोड़ चुकी थी। नौकर ने आँखों में आँसू भरे रुँधे हुए गले से कहा—

"साहब, बीबी जी अन्तिम समय मूर्छित अवस्था में आपका नाम ले कर पुकारती रहीं। मैंने आपकी बहुत खोज की, पर निष्फल! बिदाई के समय अत्यन्त कठिनता से उनके गले से ये शब्द निकल रहे थे, "अब तो मेरा अपराध क्षमा कर दो।" और नौकर की आँखों से बड़े-बड़े आँसू निकलकर उसके गालों पर बहने लगे।

जैसे इन आँसुओं ने उसे चौंका दिया। एक नौकर में इतनी भावुकता क्यों? इन आँसुओं ने उसके मुख पर करारे तमाचे लगाकर उसे गहरी निद्रा से जगा दिया। उसके अन्दर एक तूफान उमड़ पड़ा। मौजें उभरीं और उसकी छिपी हुई भावनाओं और विचारों को बहाकर ले

गई। उसकी पुरातन कुप्रवृत्तियाँ और कुचेष्टाएँ जैसे इन लहरों के बहाव के साथ बह निकलीं। उसे सहसा अनुभव हुआ कि उसने एक अधम पाप और घोर अपराध किया है। उसके हृदय में स्वर्गीया पत्नी के लिए एक प्रेम का समुद्र हिलोरें मारने लगा। जैसे उसके प्रेम करने के लिए वह केवल उसकी मृत्यु ही की राह देख रहा था।

विवाह के दुख से कहीं बढ़कर उसे उसकी मृत्यु का दुख सताने लगा। घण्टों कमरे के अन्दर बैठा वह सिगरेट पीता रहता। अतीत घटनाओं के धुँधले चित्र धुएँ के उन देवों से उमड़ते। वास्तविक आनन्द अब उसके जीवन से अदृश्य हो रहा था। माता-पिता की सहायता और असंख्य धन उसे सच्चा हर्ष देने में असफल रहा था। विवाह ने उसके हँसते हुए जीवन को एकदम पलट दिया था। माता-पिता की प्रसन्नता और वंश-मर्यादा के विचार ने उसे शकुन्तला से ब्याह करने के लिए विवश किया था। वह कुरूपा थी, इस कारण उसने उसे ठुकरा दिया था।

परन्तु उसे किसी को ठुकराने का क्या अधिकार था? वंश-प्रतिष्ठा के बहाने उसे मनुष्य के रक्त से होली खेलने का क्या हक था? रूढ़ियों की पाबन्दी के कारण एक जीवन को कुचलना नर-पिशाच बनने के तुल्य था। उसका सबसे भारी अपराध यह था कि वह नारी के हृदय को न समझ सका था। समझने का उसने प्रयत्न भी न किया था। उसके हृदय की गहराइयों में उतरकर उसने उसके दुख को जानने की कभी परवाह न की थी। उसने रूप को दूसरे सारे गुणों से श्रेष्ठ समझकर एक नारी के फूल-से कोमल हृदय को मसोसकर रख दिया था। उसने कदाचित् यह अनुभव किया था कि इस कमी को वह रुपये से पूरा कर सकेगा। परन्तु वह नहीं जानता था कि कुबेर का धन भी नारी के टूटे हृदय को नहीं जोड़ सकता। उसने धन के दरवाजे खोलकर उसे अपनी उपेक्षा से अपरिचित रखने का प्रयत्न किया था। वह उसकी एक मुस्कान को तरसती रही। उसके कान एक मधुर संबोधन के लिए तड़पते रहे।

प्रकाश की एक किरण तक उसके अन्धकारमय जीवन को न छू सकी। उसकी अभिलाषाओं का संसार उजड़ गया। उसके मधुर स्वप्नों का भी तार टूट गया और उसकी आकांक्षाओं का बाग़ उजड़ गया। उसका जीवन एक लम्बी समाप्त न होने वाली रात्रि था, जिसमें आशा और प्रकाश का भय न था।

अकस्मात् मेघों से युक्त बिजली के जबर्दस्त कड़ाके ने उसके विचारों की शृङ्खला को तोड़ दिया। आकाश जैसे फट उठा। सफेद ओलों की घोर वर्षा ने पृथ्वी को ढक दिया। अचानक फिजा में शोर बुलन्द हुआ, एक भयानक शब्द वातावरण में छा गया। उसके कान उस शब्द से फटने लगे। सारा वायुमण्डल काँपने लगा। शब्द बढ़ता गया।

"खबरदार ! फिर इस वन में पैर न रखना।"

शब्द और भी बुलन्द होने लगा। सृष्टि का अणु-अणु उस आवाज से भर गया। वायु में वही आवाज छा गई। तरुवर उसी की गूँज से गुंजायमान थे। आस-पास के पहाड़ों पर केवल उसी का शासन था। जैसे विशाल चट्टान भी गूँज उठी। वह घबरा गया। उसने कानों में उँगली रख लीं, जिससे उस आवाज़ को सुन न सके। परन्तु आवाज़ और भी तीव्र और बुलन्द हो गई।

"खबरदार ! यदि जीवन की इच्छा है तो भागो। भागो, निर्दयी, दुष्ट, नराधम !....."

वह पछाड़ खाकर गिर पड़ा !

जब उसे होश आया तो उसके शरीर के चारों ओर हिम के ढेर पड़े थे। ढेर चलते जा रहे थे और वह कह रहा था—

"काश, यही मेरी अन्तिम यात्रा हो !"

कोलाहल

गजब की गरमी पड़ रही थी। हवा बिलकुल बन्द थी। प्रकृति स्थिर थी। किन्तु इस स्थिरता में तूफान के चिह्न छिदे हुए थे। आँधी के काले-काले दल पश्चिम से उठे और नगर पर छा गए। प्रलय मच गया। पूर्व से बादलों के काले-काले दल लिये ठण्डी हवाएँ बढ़ीं घोर वर्षा ने तूफान की सेना को मार भगाया।

डोली में बैठी हुई वधू ने आँसुओं की झड़ी लगा रखी थी। इन आँसुओं में भूत-काल की घटनाएँ तैर रही थीं और भविष्य के अनिश्चित स्वप्न अँगड़ाइयाँ ले रहे थे।

"मत रो बेटी," बाप ने भीगी आँखों को पगड़ी के पल्ले से पोंछते हुए कहा।

"ऊँ.....ऊँ.....ऊँ.....!"

डोली चल पड़ी।

कुछ फासिले पर वह भी उसके पीछे हो लिया।

गर्मी के चिह्न मिट चुके थे। आँधी के लक्षण अदृश्य हो चुके थे। वर्षा थम चुकी। उसके निट गर्मी, आँधी और वर्षा प्रकृति के भिन्न-भिन्न पहलू थे। दुख, क्षोभ और सुख जीवन के ही अलग-अलग अंग। रंगीनियाँ प्रकृति का आवश्यक चरित्र और परिवर्तन जीवन के अमिट पहलू थे।

डोली चलती रही। उसके कदम पीछे-पीछे अनायास उठते गए। झील के किनारे पहुँचकर उसके पैर रुक गए, लेकिन निगाहें चलती रहीं। जब तक डोली आमों के झुरमुट के पीछे छिप न गई, वे उसका पीछा करती रहीं।

झील के कारागार में लहरें स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल हो रही थीं। आज़ादी की धुन ने उन्हें पागल बना रखा था। आज़ादी की हवा में साँस लेने की प्रबल इच्छा उन्हें जेल की चारदीवारी तोड़कर भाग जाने के लिए विवश कर रही थी। वे लहरें न जानती थीं कि इस स्वतन्त्रता और मृत्यु के बीच केवल एक बारीक परदा था। कारागार की पाबन्दी जीवन की शर्त थी और जेल का छुटकारा मृत्यु को निमन्त्रण! परिणाम की परवाह न करती हुई वे किनारे की ओर अग्रसर हुईं, जैसे असंगठित सेना अपनी शक्ति का अनुमान किये बिना शत्रु की किलाबन्दी को तोड़ने के विचार से आगे बढ़े। पूरे जोश से वे किनारे से टकराईं और चूर-चूर हो गईं। वह उनके असफल प्रयत्न पर हँस दिया। लेकिन यह पराजय लहरों के दृढ़ निश्चय को विचलित न कर सकी। एक नवीन उत्साह के साथ वे फिर बढ़ीं; किन्तु शत्रु की प्रबल दीवार ने उनकी एक न चलने दी।

झील में तूफ़ानी हलचल मच गई। पराजित लहरों ने तूफ़ाने-बदतमीजी पैदा कर दिया। शोर से भरी चीखें वातावरण पर छा गईं। शरीर पर लाल वस्त्र सजाये, हाथों में लाल चूड़ियाँ पहने और पाँव में पायल बाँधे एक सुन्दरी झील की अथाह गहराइयों से उसकी सतह पर उभरी। काली अलकें कन्धों पर बिखेरे, आँखों में चिनगारियाँ भरे, वह मदमस्त लहरों की काँपती हुई छातियों पर भीषण नृत्य करने लगी। गीत की गूँज, पायल की झंकार और लहरों का गीत चारों ओर फैल गया। लहरों पर सवार, नृत्य करती हुई, वह पागलों को भाँति झील के तट की ओर बढ़ी। कौन? नववधू?

उसने मुख मोड़ लिया। "अरे क्या तुम नाराज़ हो? बोलते क्यों

नहीं ? देखो, मैं तुम्हारे लिए एक खिलौना लाई हूँ।"

"खिलौना !" उसने खुशी से चिल्लाते हुए कहा।

"हाँ, खिलौना, रबर का गेंद। कल चचा शहर से लाये थे। हरीश झगड़ने लगा कि गेंद वह लेगा। माँ चचा के पीछे पड़ गई कि वह हमेशा एक ही चीज़ क्यों लाते हैं ? भाग्यवश पिताजी उधर आ निकले। 'हरीश अब बच्चा नहीं है,' वह बोले। चचा की जीत हुई, मेरी जीत हुई·····और·····"

"और किसकी जीत हुई ?"

"तुम्हारी।"

"वह कैसे ?"

"मेरी जीत तुम्हारी जीत," कहकर उसने झट अपने नन्हे हाथ अपनी आँखों पर रख लिये।

गेंद का खेल उनके लिए विशेष रुचिकर होता था। एक दिन नीना ने गेंद को जोर से उछाला। गेंद पानी में जा गिरा। वह उसके पीछे कूदा। लहरें उसे ढकेलकर ले गईं। वह बढ़ता गया। वह चिल्लाई, "हाथ बढ़ाओ।" उसने हाथ बढ़ाया। तभी अकस्मात् वह नीचे को धँसा और अदृश्य हो गया। झील के पानी ने उसे छिपा लिया। वह चीख उठी। उसकी चीख सुनकर कोई गड़रिया दौड़ा हुआ आया। वह फिर चिल्लाई, "वह उमड़ा, वह है।" गड़रिये ने छलाँग मारी और उसे जा पकड़ा।

"अरे, तुम हो रम्मी ! यहाँ क्या करते थे ? जो डूब जाते तो फिर ?"

"अगर मैं डूब जाता ?"

"ऐसा न कहो," उसने आँखों में आँसू भरकर कहा।

"क्यों ?"

"तो मैं कैसे जीती रहती ?" इतना कहकर वह भाग गई।

और वह बहुधा स्कूल से आता। किसी-न-किसी बहाने से आँख बचाकर वहाँ से खिसक जाता और सीधा झील ही का रास्ता पकड़ता।

"ओ नीना !" वहाँ पहुँचकर वह आवाज़ लगाता। आम की ओट से जवाबी आवाज़ आती। वहाँ से भागकर वह पीपल के नीचे आ छिपती। वह उसके पीछे दौड़ता। वह आम के पीछे छिप जाती। वह उसे पकड़ने दौड़ता। अब वह आम के वृक्ष पर चढ़ जाती। वह भी उसके पीछे-पीछे पेड़ पर चढ़ जाता और उसके पास एक टहनी पर बैठ जाता।

"जब हम किसी को नहीं बुलाते तो हमें कोई क्यों बुलाता है ?" वह मुँह बनाकर कहती।

"हम किसी के घर थोड़े बैठे हैं, भगवान् के आम के पेड़ पर बैठे हैं।" वह मुँह फेरकर कहता।

"भगवान् का आम, भगवान् का आम" कहकर चिढ़ाती और ताली बजाती। दोनों हँसी में लोट-पोट हो जाते।

"नीना, सुनो," उसका हाथ अपने हाथ में थामते हुए उसने एक दिन कहा, "मैं तुम्हें आज एक जरूरी बात सुनाना चाहता हूँ।"

"और सुनो रम्मी, मैं तुमसे कोई जरूरी बात सुनना नहीं चाहती।" वह शरारत-भरी मुस्कान से बोली।

"मैं हँसी नहीं कर रहा।"

"तुम इसके योग्य ही नहीं।"

"मैं शहर जा रहा हूँ।"

"तो इसमें ऐसी क्या बात है ?"

"खैर, मैं कल सवेरे जा रहा हूँ।"

"सचमुच ? कब लौटोगे ?"

"छुट्टियों में।"

"क्या मतलब ?"

"अब मैं वहाँ पढ़ा करूँगा।"

शाखा जोर से हिली। तना हवा में लहराया। अत्यन्त कठिनता से वह अपने-आपको सँभाल सका। वह जमीन पर गिर पड़ी थी। वह भी कूद पड़ा। वह बेहोश पड़ी थी। उसने अपनी कमीज के दामन को

झील के पानी में भिगोया और लाकर उसके मुँह में निचोड़ दिया। फिर दुबारा दामन में पानी लाकर उसके मुँह पर छींटे मारे। उसने आँखें खोलीं और कहा, "रम्मी !"

उसने उसके कलियों-से सफेद और फूल जैसे कोमल हाथों को अपने हाथों में ले लिया।

"तुम्हें क्या हो गया था ?" उसने धीरे से उसके हाथों को दबाते हुए पूछा।

"मुझे क्या मालूम ?"

"तुम गिर क्यों पड़ी थीं ?"

"क्या जानूँ ?"

"बेहोश होने का क्या कारण था ?"

"मुझसे क्या पूछते हो ?" वह व्याकुलता से बोली।

"अरे, तुम तो रोती हो ! यह क्या ? क्या पागल हो गई हो ?"

"हाँ, पागल हूँ।"

"पागल मत बनो नीना !"

"तो तुम शहर जाने का विचार छोड़ दो।"

"अच्छा, नहीं जाऊँगा।"

वह एकदम उठकर बैठ गई। उसके हाथ उसकी गरदन में पड़े थे।

किन्तु शहर जाना ही पड़ा। प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ी।

अब वह हाईस्कूल में प्रवेश कर चुका था, लेकिन नये वातावरण को न अपना सका। वह हर दो सप्ताह बाद घर लौट आता और सबसे पहले नीना से मिलता।

"नीना, अब इसके साथ बातें न किया करो।" उसकी माँ ने उसे एक दिन समझाया।

"तो किसके साथ बातें किया करूँ ?"

"अपनी सहेलियों के साथ।"

"इसे क्या हो गया ?"

"अब वह बड़ा हो गया है।"

"और मैं क्या छोटी हो गई हूँ ?"

"चुप रहो, बहस मत किया करो।" न जाने किधर से निकलकर उसके पिता उसे डाँट बताने लगे।

वह उसे बताती कि हम अब बड़े हो गए हैं और बड़ों को परस्पर नहीं मिलना चाहिए।

"केवल झील के किनारे मिलना चाहिए।"

दोनों खिलखिलाकर हँस देते।

इस हँसी में मां की झिड़कियाँ और पिता की घुड़कियाँ हवा बनकर उड़ जातीं और आकाश की नीलिमा में अदृश्य हो जातीं। वह उसे गाना सिखाता। वह गाती, "बन की चिड़िया बन के बन-बन डोलूँगी।" और भाग निकलती। वह बन की चिड़िया के पीछे दौड़ता; आम के पीछे, फिर पीपल के पीछे,। वह अकस्मात् पीछे मुड़कर उसे पकड़ लेता और बाहुपाश में भर लेता।

गरमियों की छुट्टी में वे बराबर मिलते रहे।

एक दिन वह बोला—

"नीना, मैं वापस शहर जा रहा हूँ।"

"कब ?"

"परसों।"

"फिर कब लौटोगे ?"

"बड़े दिन की छुट्टियों में।"

"किन्तु अभी तो पन्द्रह दिन बाकी हैं।"

"किशोरी का पत्र आया है कि शीघ्र आओ।"

"क्या कोई लड़की है ?"

"हाँ, क्या ? कौन ?"

जैसे उसके मुँह पर किसी ने तमाचा मार दिया हो। वह पागलों की भाँति घर की ओर भागी। वह हैरान था कि उसे क्या हो गया।

वह उसके पीछे दौड़ा, लेकिन वह बिजली की तेजी से भागी जा रही थी। वह उसे पकड़ न सका।

तीसरे दिन वह चला गया।

तत्पश्चात् कई वर्ष तक उनकी मुलाकात न हो सकी। इस बार वह जब गाँव आया, तब उसकी बारात आई हुई थी।

फिजा में नृत्य की आवाज फिर बुलन्द हुई। पायल फिर बजने लगा। वायुमण्डल पर संगीत की लहरें छा गईं।

"बन्द करो नाच !" उसने चिल्लाकर कहा।

पर नाच होता रहा।

"मैं कहता हूँ, बन्द करो इस ढोंग को !"

उसकी आवाज वायु में गूँज उठी। सन्नाटा छा गया। नृत्य बन्द हो गया। झील का नीला जल शान्त हो गया। निस्तब्धता का पूर्ण राज्य था।

वधू आगे बढ़ी और समीप आकर व्यंग्य से बोली—

"यह रोष क्यों ? नाच से नाराजगी क्यों ? यह पागलों का नाच है, खुशी का नहीं। मेरे शरीर का अंग-अंग जल रहा है। बदले की भयंकर ज्वाला मेरे अन्दर भड़क रही है। तुमने मुझे जलाया है, मैं तुम्हें सताऊँगी। तुमने मेरे सुख को मिट्टी में मिलाया है, मैं तुम्हारे चैन को मिटा दूँगी।"

"लेकिन यह सब क्यों ?"

"क्यों ? अपने-आपसे पूछो, जिसने मेरे पवित्र प्रेम को इस प्रकार ठुकराया।"

"कब और कैसे ?"

"वह किशोरी कौन थी ?"

"कौन किशोरी ?"

"जिसके पत्र ने मेरी सुख के बाग में आग लगाकर उसे खाक कर दिया।"

वह ठहाका मारकर हँसा।

"अरी पगली, वह तो मेरा मित्र किशोरीलाल था।"

"किशोरीलाल !"

वातावरण में कोलाहल-सा छा गया। पश्चिम में काला तूफान उठा। भयंकर चीत्कारों से वातावरण गूँज उठा। झील के पानी में प्रचण्ड वायु के झोकों ने आम और पीपल के वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंका। प्रकृति क्रोध से पागल हो उठी। नृत्य और भी तेज हो गया। उसकी आँखों से चिनगारियाँ बरसने लगीं। उमकी भीषण चीखें वातावरण में फैल गईं। ताण्डव नृत्य में मस्त, लहरों की उछलती हुई छातियों को रौंदती हुई, वह अचानक पानी की गहराइयों में समा गई। प्रकृति एकदम शान्त हो गई। वायुमण्डल में मरघट-सा सन्नाटा छा गया।

टर·····रर·····रर एक मेंढक टर्रा रहा था।

"बदज़ात कहीं का," उसने पत्थर का निशाना बाँधते हुए कहा, "क्यों शोर मचा रखा है ?"

"जी, मैं शोर नहीं मचा रहा। केवल आपसे यह कहना चाहता हूँ कि मुझे छुट्टी की अत्यन्त आवश्यकता है।"

"क्या काम है ?"

"मेरे मित्र का विवाह है।"

"मित्र का विवाह है !" उसने मेज़ पर मुक्का मारते हुए कहा, "आपके पास हमेशा कोई-न-कोई बहाना मौजूद रहता है—कभी शादी, कभी मौत; कभी खाँसी, कभी जुकाम। लेकिन दफ्तर का काम कैसे चलेगा ? सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की हमेशा आपके विरुद्ध शिकायत रहती है। आपके ड्राफ्ट दुबारा लिखने पड़ते हैं। आपका काम बाक़ी पड़ा रहता है। दफ़्तर में आप हमेशा देर से आते हैं। आपको पचास बार चेतावनी दी जा चुकी है, लेकिन आप पर कोई असर नहीं होता। अगर आप काम करना नहीं चाहते तो त्यागपत्र देकर घर बैठिये।"

जब वह घर आया तो क्रोध की आग उसके अन्दर सुलग रही थी। वह असिस्टेण्ट सेक्रेटरी को नीचा दिखाना चाहता था। वह सुपरिण्टेण्डेण्ट को अपमानित करना चाहता था। "बदज़ात ! हरामी ! कमीने !" उसका दिल जल रहा था।

दरवाजे पर किसी ने कुण्डी खटखटाई। शायद कुलदीप था। कैसा विचित्र आदमी है यह भी ! शायद इसे कोई घर घुसने नहीं देता। ये लोग भी अजीब सिर-दर्द बन जाते हैं और जब उसका बात करने का मूड ही नहीं, तब ये लोग उसे क्यों खामखाह तंग करते हैं। आज वह उसे खरी-खरी सुना देगा। क्या समझ रखा है इसने ? लेकिन जब उसने दरवाजा खोला तो अपने परम मित्र नरेन्द्र को खड़ा पाया।

"भई वाह ! दफ़्तर से सीधे घर क्यों भाग आये ? भला क्या कुछ है आज ?" उसने दोनों हाथ घुमाते हुए पूछा।

"तबियत खराब हो गई थी ज़रा," उसने गम्भीरता से कहा।

"यार, तुम भी खूब हो।" नरेन्द्र ने कहा, "ज़रा-सी बात पर बिगड़ बैठते हो। इधर देखो, कोई कुछ बकता रहे, ज़रा परवाह नहीं। और फिर विलियम की बातों का बुरा मानना ही क्या ? कान का कच्चा है ज़रा। झट सुपरिण्टेण्डेण्ट की बात पर विश्वास कर लेता है। और बेचारा रामलाल, मुझे तो उस पर क्रोध आने के बदले तरस आता है। आदत से मजबूर है। सौ खुशामद करके तीस रुपये पर भरती हुआ था। बीस साल जूतियाँ चाटने के बाद कहीं जाकर सुपरिण्टेण्डेण्ट बना। सारा जीवन झिड़कियाँ खाते बीता। अब उन्हें हम पर उगल रहा है।"

"लेकिन असिस्टेण्ट सेक्रेटरी के कान क्यों भरता है ?"

"पेट का हल्का जो ठहरा।"

"यह नीचता की निशानी है।"

"पर दिल का साफ है।"

"और ज़बान का नहीं। मैं उसे ज़बान की सफाई याद करा दूँगा।" उसने दाँत पीसते हुए कहा, "उसकी खोपड़ी की मरम्मत कर दूँगा।"

"हा-हा-हा ! ही-ही-ही ! भई वाह !" नरेन्द्र ने कमरा सिर पर उठा लिया, "अरे यार, पहले अपनी खोपड़ी तो ठीक कर लो।"

"कैसे ?"

"इससे," उसने जेब से एक बोतल निकालते हुए कहा।

"क्या है ?"

"स्काच ह्विस्की।"

"लेकिन मैं तो पीता नहीं।"

"तभी तो दिमाग़ खराब है।"

"खैर, होगा, मैं न पियूँगा।"

"यार, कैसे आदमी हो तुम ? न जाने तुम्हें कब समझ आएगी ? भला एक-दो पेग लेने में क्या हर्ज है ?"

"मैं नहीं पीता, यह हानिकारक होती है।"

"क्या बकते हो जी ? क्या इसे पीने वाले सब बीमार रहते हैं ? क्या मदिरा-सेवन न करने वाले सब स्वस्थ रहते हैं ? क्या पानी की जगह शराब पीने वाले सब देशों में क्षय रोग का ही दौरा है ? बेटा, लो एक पेग पियो और दुनिया के सब दुख भूल जाओ। दुनिया में सिवा इसके रखा ही क्या है ?" नरेन्द्र बोला।

और उसने शीशे के दो गिलास उठाकर उनमें ह्विस्की उँडेल दी।

जब वह पीकर लेटा तो उस पर एक विचित्र नशा छाया हुआ था; कमरे की चीजें, छत और दीवारें जैसे घूम रही थीं। इसके बाद उसे कुछ होश न रहा।

जब उसकी आँख खुली तो नरेन्द्र सोफे पर बैठा सिगरेट पी रहा था।

"अब क्या प्रोग्राम है ?"

"कहीं घूमने और दिल बहलाने जाऊँगा," नरेन्द्र ने कश लगाते हुए कहा।

"कहाँ ?"

"क्या साथ चलोगे ?"

"शायद ।"

और वे दोनों दीदार के घर पहुँचे; शहर के अन्दर गन्दी गलियों से गुज़रते हुए एक मकान के सामने पहुँचे। गन्दी सीढ़ियों पर चढ़कर दरवाजे पर दस्तक दी। अन्दर दो स्त्रियाँ भड़कीले वस्त्र पहने, सुर्खी और पाउडर से मुँह बिगाड़े बैठी थीं। फर्श पर बड़ी-बड़ी मूँछों वाले तीन-चार गुण्डे बैठे थे। तबला, सारंगी और हारमोनियम उनके सामने थे।

"बहुत दिन बाद आना हुआ हुजूर !" मोटी स्त्री नरेन्द्र से बोली। फिर कहा, "उस्ताद फत्तू, अब तुम लोग जाओ।"

तीनों गुण्डे बिना ज़बान हिलाए चुपचाप बाहर चले गए।

नरेन्द्र ने दीदार से अपने मित्र का परिचय कराया।

वह बहुत प्रसन्न थी। उसे एक नया ग्राहक मिला था। मित्र भी खुश था। उसे दिल बहलाने के लिए नया अड्डा मिल गया था। न जाने समय कितनी तेज़ी से बीत जाता। दीदार के सुरीले गानों में वह दफ्तर के नीरस जीवन को भुला सकता था। कभी-कभी मोटी स्त्री भी गाने के लिए हठ करती। सुर-ताल से अनभिज्ञ वह चीखना शुरू कर देती। उसकी तीक्ष्ण और अप्रिय आवाज कानों के पर्दे फाड़ती। कमरे में शोर मच जाता। उसका जी चाहता कि भाग जाय लेकिन····।

"मैं लेकिन-वेकिन कुछ नहीं जानता। यह भी कोई भलमंसी है ? छः महीने बीत गए, आपने किराये का एक पैसा भी नहीं चुकाया। क्या मैं आपका नौकर हूँ कि रोज चक्कर काटा करूँ ? मैं ज्यादा सबर नहीं कर सकता।"

"अच्छा आपके कितने रुपये हैं ?"

"दो सौ ?"

"क्या आप एक महीना और प्रतीक्षा नहीं कर सकते ?"

"एक दिन भी नहीं।"

"लेकिन देखिए, इतनी जल्दी प्रबन्ध नहीं हो सकता।"

"कहीं से लाकर दो। मैं नहीं जानता और आगे के लिए यदि आप ठीक किराया नहीं दे सकते तो मकान खाली कर दीजिये।"

"और कहाँ जाऊँ ?"

"दीदार के पास।"

जैसे किसी ने उसे भरपूर तमाचा मारा हो। उसकी आँखों में खून उतर आया। वह पागलों की भाँति उस पर पिल पड़ा और घूँसों की वर्षा आरम्भ कर दी। उसके दो दाँत बाहर आ गिरे। उसके गालों से खून टपक रहा था।

"मार डाला, मार डाला—मुझे बचाओ।" उसने शोर मचाना शुरू कर दिया।

* * *

शोर सारे शहर पर छा गया। चालीस लाख जनता की आबादी पर। अजीब हालत थी। जोश और भय, रोष और डर, शक और घबराहट ! घृणा का समुद्र लहराने लगा। मनुष्य जंगली पशु बन बैठा। रक्तपिपासा प्रबल हो उठी। 'आदमबो, आदमबो' की पुकार से आकाश चीख उठा।

लाठियों, ईंटों, चाकुओं, छरों और लोहे की सलाखों से सुसज्जित भारी हजूम एक विशाल मकान को घेरे खड़ा था। उसके पास पेट्रोल के कनस्तर और दियासलाई की डिबियाँ भारी संख्या में विद्यमान थीं। अकस्मात् धुएँ के बादल आकाश पर छा गए। मानुषिक निपुणता से निर्माण किये गए गगनचुम्बी मुहल्लों को ज्वालाओं ने अपनी लपेट में ले लिया। उनमें असंख्य बच्चे, स्त्रियाँ तथा पुरुष थे। उनकी मर्मभेदी चीत्कारों ने आकाश में छेद कर दिए और घोर वर्षा होने लगी। एक अथाह समुद्र की असंख्य लहरों के समान जनसमूह आगे बढ़ा—वर्षा से बचाये हुए मनुष्यों को मजा चखाने के लिए, जो ऊपरी मंजिलों में बैठे अन्तिम साँस ले रहे थे और जीवन तथा मृत्यु के बीच उस क्षणिक

काल में सिसकियाँ भर रहे थे।

"पकड़ लो, पकड़ लो, जाने न पाए।" एक ओर से आवाज़ आई।

जनसमूह आवाज़ की ओर बढ़ चला। घायल मनुष्य एक गली में से निकले। उनकी छातियों से रक्त बह रहा था। वे श्वेत वस्त्र धारण किये थे।

"हमें मत मारो, हमने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। हमारा सब कुछ लुट चुका है। हमें मत मारो।"

"तुम्हारा कौन मज़हब है ?"

"वही, जो तुम्हारा।"

"खोलो धोती !"

"विश्वास करो, सौगन्द खाकर कहते हैं।" वे हाथ जोड़कर और दोहरे होकर बोले। मृत्यु का भय उन्हें खाये जा रहा था।

एकदम लाठियाँ, छुरे और सलाखें उनकी ओर बढ़ीं और क्षण-भर में वे चलती-फिरती प्रतिमाएँ मिट्टी में मिल गईं। जनसमूह ने आकाश-भेदी नारे लगाये। शायद देवताओं ने इन नारों को सुना, कानाफूसी की और कान बन्द करके रह गए।

जनसमूह छत की ओर लपका। विजय के नारे लगाता हुआ वह आगे बढ़ा। छत पर खड़े निराश मनुष्यों को इन्होंने ललकारा। स्त्रियाँ और बच्चे चिल्लाने लगे; मर्दों ने विनती की, नाक रगड़ी, परमात्मा का वास्ता दिया, नोटों के पुलिंदे उन पर बिखेर दिए, आभूषणों की वर्षा कर दी। लोग उन पर पिल पड़े। लालच और भी बढ़ गया। भूख और भी तेज़ हो गई। छतवालों ने अपने घरों की चाबियाँ भी फेंक दीं। सब धन लुटाने का लोभ दिया, केवल प्राणरक्षा के लिए। परन्तु यही तो कड़ी शर्त थी।

कुछ मनुष्यों ने, जो परनाले के रास्ते छत पर चढ़ गए थे, चालाकी से सदर दरवाजा खोल दिया। फिर क्या था ? भीड़ के लोग छतों पर चढ़ गए और शिकार पर टूट पड़े। चीखें, पुकारें, नारे, आहें वातावरण

में गूँज उठीं। निहत्थे मनुष्य शस्त्रधारी मनुष्यों के हाथों ही शहीद हो रहे थे। उनकी चीखें और आहें न परमात्मा को मोम कर सकीं और न सरकार को। मनुष्य की लाशों के टुकड़े हवा में बिखेरे जाते। शिशुओं को ऊपर उछालकर उनके नीचे तलवार रख दी जाती और विजय की तालियाँ हवा में गूँज उठतीं। स्त्रियों को पकड़कर खुले-आम उनका सतीत्व नष्ट कर दिया जाता और फिर उनके शरीर के टुकड़ों को हवा में बिखेर दिया जाता, जैसे कोई दानी सम्पत्ति लुटा रहा हो। मनुष्यों की लाशों के ढेर बाजारों में, सड़कों पर, गलियों में, चौराहों पर और मकानों के भीतर जमा थे। कई दिन वहीं पड़े रहे। पुलिस और फौज की लारियाँ आतीं और उनको रौंदती हुई चली जातीं। वर्षा प्रतिदिन होती। कुछ दिन बाद लाशें फूल गईं। उनकी दुर्गन्ध सारे वायुमण्डल में छा गई। नाक फटने लगी। किसी लाश का कोई वारिस न बनता था। सबको अपने प्राण प्रिय थे। जब किसी ने भी उन लाशों को न सँभाला तो गिद्धों को लाज आ गई और उन्होंने उन्हें ठिकाने लगाया।

लोग रात को भी न सोते। शत्रु के भय ने उनकी निद्रा को भगा दिया था। विरोधी समूहों के शस्त्रधारी जत्थे बाज़ारों, सड़कों और गलियों का चक्कर काटते। केवल यह ध्यान रखते कि शत्रु के शस्त्रधारी जत्थों को न ललकारते। उनकी दृष्टि निहत्थे मनुष्यों, भाग्यहीन स्त्रियों और असहाय शिशुओं पर रहती।

तब सरकार को सूझी कि यह व्यंग्य बन्द होना चाहिए। नादिर-शाही हत्याकाण्ड के पश्चात् उसे लोगों को बचाने की चिन्ता हुई। उसे लोगों के इस कानून पर क्रोध आ गया और दण्ड के लिए उसने शहर को सेना के हवाले कर दिया। गोरी सेना ने वहाँ अपना पूर्ण प्रभुत्व जमा लिया। उसे भी अपनी वीरता और बल दिखाने का सुअवसर मिल गया। गोरे सैनिक किसी पर भी गोली चला सकते थे। निहत्थे मनुष्य क्या नहीं सहन कर सकते!

फिर उनके पास टैंक थे। जब वे चलते, धरती का हृदय काँप

उठता, मकानों की नींवें हिल जातीं और छतें काँप उठतीं। साथ ही गोलियों की आवाज़ आकाश में गूँज उठती।

रात को टैंक खुर्राटे भरते, गोलियाँ दनदनातीं और विद्रोही समूह गगनभेदी नारे बुलन्द करते।

आधी रात बीते अकस्मात् शोर बुलन्द हुआ—

"पकड़ो, दौड़ो, शत्रु जाने न पाये।"

टैंक और गोरे सैनिकों से भरी हुई लारियाँ घटनास्थल पर पहुँच गईं। गोलियाँ वायु में सनसना रही थीं। एक छत से आवाज आई—

"साहब!"

"क्या है?" गोरे अफसर ने गरजकर पूछा।

"ओई भाँगा बाड़ी ते दूटी चोर लुके आछे।" (उस टूटे मकान पर दो चोर छिपे बैठे हैं।)

"अभी देखते हैं।"

एकदम बन्दूकें सँभाले गोरे सैनिक आगे बढ़े। फायर गूँजने लगे। मकान की दीवारें काँप उठीं।

"आदमी ऊपर है," किसी ने आवाज़ दी।

"कौन है ऊपर? नीचे आ जाओ।"

एक हिन्दुस्तानी पुलिस कर्मचारी ने उच्च स्वर से वायु में परामर्श दिया। ठा···ठा···ठा···· एकदम राइफलों ने शोर मचा दिया।

"मार्च बैक," कमाण्डर का आदेश उस निस्तब्ध वातावरण में गूँज उठा।

दूर शत्रु दलों के गगनभेदी नारे वायु में गूँज रहे थे। वे परमात्मा को चिढ़ा रहे थे, "देखो हम क्या नहीं कर सकते? तेरे विधान का विध्वंस कर सकते हैं; तेरी सृष्टि को मटियामेट कर सकते हैं। क्या अब भी तू हमारी शक्ति से प्रभावित नहीं होता?"

ईश्वर के लिए यह एक घोर समस्या थी कि वह पराजय स्वीकार

कर ले अथवा एक और प्रयत्न कर देखे। मनुष्य ने उसे परेशान कर रखा था। उसकी खोज की धुन ने उसकी नाक में दम कर रखा था। विज्ञान के आविष्कर्ता आज उसके विधान ही से लड़ रहे थे, ऐटम का आविष्कारक आज उसे ही चुनौती दे रहा था। जिस संसार की सृष्टि उसने अनगिनत शताब्दियों में की थी, आज एक मुट्ठी-भर मनुष्य उसका ध्वंस करने पर तुले हुए थे। ईश्वर का शासन डावाँडोल था और उसका राज्य अन्तिम साँसें ले रहा था। वह काँप उठा·····

टर–रर्–रर्–रा, मेंढक फिर चीख उठा।

"चुप रह बदज़ात, बन्द कर इस असामयिक गीत को।"

उसने आगबबूला होकर उसके सिर पर पत्थर दे मारा।

बुलबुले

सामने दयार के ऊँचे वृक्ष हरे छाते ताने खड़े थे। बाईं ओर गहरे खड थे। सफेद बादलों के घुएँ गिरि-गर्त के तट से धीरे-धीरे उठ रहे थे। पर्वत के नीलशिखर पर भी सफेद-सफेद घुआँ अटका हुआ-सा था। ऊपर, दूर, आकाश की ऊँचाइयों में हलके काले रंग के बादल इठला रहे थे। दाहिनी ओर, सूर्य रात्रि के स्वप्न से जागकर अँगड़ाइयाँ ले रहा था। उसकी सुनहली किरणें बादलों का आलिंगन कर रही थीं और वृक्षों को चूम रही थीं। कुछ दूर पर ग्रामोफोन बज रहा था—

"काले काले बादल घिर-घिर आ गये, आ गये।"

पलँग पर उसकी पत्नी और बालक सो रहा था। पत्नी का वर्ण बिलकुल पीला था, जैसे बरसों से बीमार हो। उसके गाल पिचके हुए थे। पाँच साल पहले इन गालों में गुलाब की-सी नवीनता तथा उज्ज्वलता थी। कालेज में उसे 'लाला रुख़' कहा जाता था। सभी लड़के उसके प्रशंसक थे। कालेज की सभी सभाओं में उसका उल्लेख होता था और विद्यार्थियों की मुख्य गोष्ठियों में उसके बारे में बातचीत हुआ करती थी। कोई उसकी नाक पर कविता करता, कोई उसकी आँखों की प्रशंसा करता और कोई उसके बालों पर प्रशंसात्मक गीत गाता। कक्षा के कमरों में, डेस्कों पर, उसके चित्र गढ़े जाते। विद्यार्थियों की कापियों के पन्ने उसकी आकृतियों से भरे रहते। लेकिन उसके सौन्दर्य से बढ़कर

उसकी वक्तृता की धूम थी। कालेज में उसकी वाणी के जादू की धाक बैठी हुई थी। दूसरे विद्यार्थी उसके सामने टिक नहीं सकते थे। वह बिना पूर्व सूचना के भाषण देती थी। अपने विषय को इस चतुरता से निभाती और इतने प्रबल अखण्डनीय प्रमाणों से सिद्ध करती कि श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते। वे चकित होते कि किस तरह, एक लड़की, सरलता के साथ, एक विदेशी भाषा पर इतना अधिक अधिकार रखती है। कालेज के अंग्रेज़ प्रोफेसर अपनी मातृ-भाषा में इतनी सुन्दर वक्तृता नहीं दे सकते थे। जब वे अपनी मातृभाषा में बोलते तो कई बार उनकी वाणी में शिथिलता आ जाती थी। लेकिन जब वह बोलती तो ऐसा मालूम होता जैसे संगीतमय झरना झर रहा हो। कई बार उसने प्रसिद्ध भाषण-प्रतियोगिताओं में विपक्षियों को पराजित किया था। जब विभिन्न कालेजों में कोई बड़ी प्रतियोगिता होती, तो हेमांगिनी ही के लिए अपने कालेज का प्रतिनिधित्व करना अनिवार्य हो जाता था। ऐसे अवसरों पर वह अपने जौहर खूब दिखाती थी। अपनी तीखी आलोचना से बड़े-बड़े घाघों को तड़पा देती और श्रोताओं पर जादू-सा छा जाता।

लेकिन वह उसकी सफलता पर क्रोध से तिलमिलाता रहता था। भला क्या वह भाषण-कला में किसी से कम था? हेमांगिनी की प्रसिद्धि के पहले उसी का नाम सबके मुँह पर था। उसके आने पर जैसे उसकी प्रसिद्धि पर ग्रहण लग गया। वह उसे एक आँख न भाती थी। उसका अपराध केवल यह था कि वह अबला जाति में से न था।

जब कालेज या होस्टल में लड़के हेमांगिनी को चर्चा का विषय बनाते और आहें खींचते हुए उसकी प्रशंसा का राग अलापते तो वह भड़क उठता। कहता, "वासना की भूख के शिकार! एक लड़की देख ली, बस मरने लगे। आखिर उसमें क्या लाल लगे हैं? आठों पहर उसके राग गाते हैं। वह तो हर समय घमण्ड से चूर रहती है और किसी को भी कुछ नहीं गिनती, मगर आप लोग हैं कि व्यर्थ उसे सिर पर चढ़ा रखा है!"

"सौभाग्य होगा यदि वह हमारे सिर पर चढ़ सके," कहकर असग़र मिर्ज़ा एक लम्बी आह खींचता।

"मैं नहीं समझता, आप किस आधार पर उसके भाषण पर मुग्ध हैं ?"

"हम सुखनफ़हम हैं, 'ग़ालिब' के तरफदार नहीं।" अजगर लुधियानवी राग से अलापते हुए कहता।

"आपने कभी उसके विषय को भी समझने का प्रयत्न किया है ?" वह क्रोध से कहता, "मैं दावे से कहता हूँ, कभी नहीं। आप केवल सौन्दर्य के उपासक हैं और पक्षपात के शिकार। कला और विषय को समझने की आप में रत्ती-भर भी योग्यता नहीं। यह निपट अत्याचार और अन्याय है कि केवल अबला जाति की होने के कारण उसे उत्कृष्ट समझा जाता है।"

"यह क्या साधारण कारण है ?" असगर मिरज़ा और भी लम्बी आह भरता।

"यार, क्या न्यायाधीशों के हृदय नहीं होता ?" दर्शनसिंह आवेश में कहता।

"काश, वह रोज भाषण करे और इनाम जीते," वेदप्रकाश सिगरेट को खींचते हुए कह उठता।

"और तुम छाती पर हाथ रखकर आहें भरो," अट्टहास की बौछार में मुनीर कह उठता।

टैगोर-समाज के तत्त्वावधान में ऐतिहासिक दृश्य उसके कल्पना-पट पर अंकित होने लगा।

उसमें विभिन्न कालेजों के छात्रों के अतिरिक्त नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी सम्मिलित थे। किस गौरव के साथ हेमांगिनी मंच पर पहुँची ! हॉल में बिजली-सी चमक उठी। अगणित उत्साहोत्पादक तालियों ने स्वागत किया। फिर हॉल में एक सन्नाटा छा गया, जैसे लोगों को किसी जादूगर ने मन्त्रमुग्ध कर लिया हो। सभी दृष्टियाँ एक ही रूप पर केन्द्रित थीं। नवयुवक अपने सीने थामे बैठे थे, जैसे उन्हें हृदयों के सीने चीर

कर उड़ जाने का भय हो। हेमांगिनी ने भाषण आरम्भ किया। विस्तृत हॉल उसकी सुरीली आवाज़ से गूँज उठा। लोग स्तब्ध होकर बैठे थे, जैसे उन पर मन्त्र फूँक दिया गया हो। उसका अनुपम सौन्दर्य, उसकी अद्वितीय शैली और उसके रागमय स्वर ने लोगों को आकर्षित कर लिया। उसका एक-एक तर्क सैकड़ों हाथों की हथेलियों को इस ज़ोर से आपस में टकरा देता था कि हर क्षण छत के उड़ जाने की आशंका रहती।

हेमांगिनी के बाद उसकी बारी आई। मगर उस जादूगरनी के बाद भाषण करना बाँसुरी के बाद ढोल बजाना था। सौन्दर्य के अगणित मधुकलशों से उत्पन्न हुई मादकता को उतारना उसके बूते के बाहर था। अगर वह उस समय लियोनार्डो ड विंची के गुण उधार ले आता तो भी सफलता की आशा में पानी को मथना था। फिर भी उसने साहस का पल्ला हाथ से न छोड़ा। हृदय दृढ़ करके ऊँचे स्वर से भाषण प्रारम्भ किया, परन्तु कोई उसकी ओर आकर्षित ही न था। श्रोतागण जम्हाइयाँ ले रहे थे, जैसे कई दिन के जागे हों; फिर भी वह पूर्ण उत्साह और भावुकता से बोलता रहा। लेकिन अचानक हॉल पूर्ण अट्टहास से गूँजने लगा। उपस्थित व्यक्ति सभापतिजी की ओर देखकर लोट-पोट हुए जा रहे थे। उसने देखा, उक्त सज्जन मेज पर सिर रखे गहरी नींद में बेसुध ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे भर रहे थे। खर्राटों की आवाज़ लोगों को पागल बना रही थी। हाल में बवण्डर उठ चुका था। एकदम मधुर स्वप्न का जादू हटने पर एक झटके के साथ सिर उठाकर सभापतिजी पूरी शक्ति के साथ हाथ पीटते हुए बोले, "हेयर-हेयर!" उपस्थित व्यक्ति कुरसियों पर बैठे-बैठे झूमने और नाचने लगे। अट्टहास के शोर से छत फटी जा रही थी। अत्यन्त कठिनता से लोग अपने को नियन्त्रण में रख सके। समाप्ति पर, जैसी कि पहले से सम्भावना थी, पारितोषिक के निर्णय में हेमाङ्गिनी देवी का नाम था।

उसके दूसरे दिन—

प्रिंसिपल साहब ने उन दोनों को अपने यहाँ चाय पर बुलाया। वह

उसके लिए तैयार न था। उसे हेमांगिनी से चिढ़ थी। लेकिन प्रिंसिपल की बात टालना भी उचित न था। चाय का घूँट पीते हुए प्रिंसिपल साहब बोले, "कल की प्रतियोगिता में आप दोनों ने कमाल कर दिया। कालेज को चार चाँद लगा दिए। मैं दोनों का कृतज्ञ हूँ और आपको बधाइयाँ देता हूँ। इसके साथ ही……"

"साहब, आपका टेलीफ़ोन है," नौकर ने आकर बाधा डाली।

"क्षमा कीजिए, मैं दो मिनट में लौटकर आता हूँ।" उन दोनों को वहीं छोड़कर वह चले गए।

यदि नौकर वहाँ खड़ा रहता तो उसे कितना साहस रहता। लेकिन हेमांगिनी के सामने एकान्त में बैठकर वह अत्यन्त कठिन परिस्थिति में बँध गया। घबराई हुई दशा में, चाय का घूँट भरते हुए, वह हेमांगिनी की ओर देख रहा था। उसका हृदय बल्लियों उछलने लगा। वह वहाँ से भाग जाना चाहता था। कहीं उसकी दृष्टि फिर हेमांगिनी की आँखों से न टकरा जाय। वह एक विचित्र अवस्था में पड़ गया था। अचानक उसके हाथ से प्याला छूट गया। अगर उसे उस समय मेज़ के नीचे छिपने की आज्ञा मिल जाती तो वह उस अवसर को हाथ से कभी न छोड़ता, लेकिन उसी समय जैसे उसकी लज्जा को मिटाने के लिए हेमांगिनी बोली—

"कल तो आपने खूब जौहर दिखाये।"

वह इन शब्दों के लिए बिलकुल तैयार न था। वह तो इनके विरुद्ध शब्दों को सुनने की आशा रखता था। वह उससे झगड़ना और लड़ना चाहता था। समझौते के इस उपहार ने उसे आश्चर्य में डाल दिया। लेकिन यह भी तो हो सकता था कि विरोधी नये अस्त्र प्रयोग में ला रहा हो।

"मर्द जौहर भी दिखाये तो कौन पूछता है ?" उसने कटुता के साथ कहा।

इस पर क्रोध व्यक्त करने के बदले हेमांगिनी हँस पड़ी और अपनी

बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों को उसके चेहरे पर गड़ाती हुई बोली—

"अगर मैं निर्णायक होती तो आपके पक्ष में निर्णय करती।"

"किस आधार पर ?"

"आपकी विशेषताओं के बारे में क्या कहना ! मैंने तो कल पहली बार आपके गुणों का परिचय पाया।"

"पता नहीं, स्त्रियों को दूसरों को बनाने में क्यों इतना आनन्द प्राप्त होता है ?" वह चिढ़कर बोला।

"पता नहीं, पुरुष हर बात को सन्देह की दृष्टि से क्यों देखते हैं ?" उसने कोमल भाव से कहा, "मेरे विचार से सच्चा पौरुष तो मानव को सन्देह और असत्य से घृणा करने को प्रोत्साहित करता है।"

"सन्देह करना पौरुषहीनता का चिह्न नहीं है।"

"पर यह हीनता का द्योतक है, जो पौरुषहीनता का ही दूसरा नाम है।"

"क्षमा कीजिए," प्रिंसिपल साहब ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा, "वाइस चांसलर साहब से फोन पर बात कर रहा था। हाँ," अपनी जगह पर बैठते हुए उन्होंने कहा, "अगले मास लखनऊ में आयोजित अखिल भारतीय वादविवाद प्रतियोगिता के लिए मैंने आप दोनों का नाम प्रस्तावित किया है।"

वे दोनों साथ लखनऊ गये और साथ ही वापस आये। अब वह ऐसा अनुभव करने लगा, जैसे वे दोनों वर्षों से इकट्ठे रहते आए हों। वे एक-दूसरे से जैसे घुल-मिल गये। उनके कप जीतने की खुशी में प्रिंसिपल साहब ने शिक्षकों तथा कालेज के चुने हुए लड़कों को आमन्त्रित किया और दोनों की प्रशंसा के पुल बाँध दिए।

अब वह हेमांगिनी की कटु आलोचना न करता था। पहले उसकी प्रशंसा सुनकर आगबबूला हो जाता था, अब उसकी बुराई सुनकर तिलमिला उठता। कालेज के छात्रों को यह परिवर्तन पसन्द न था। वे सब हेमांगिनी पर अपना अधिकार समझते थे। अब जैसे उनका अधि-

कार नष्ट हो गया। वह उसकी उपस्थिति में तो चुप रहते, लेकिन पीछे, मज़ाक उड़ाते। कृष्णपट पर उन दोनों के विभिन्न रूपों के चित्र होते—कभी-कभी अत्यन्त अश्लील। उसका दिल जलकर कबाब हो जाता। क्रोध की लहरें उभरतीं, लेकिन दब जातीं। उसे अपनी कमज़ोरी पर तरस आता। उसके अभिन्न मित्र भी उससे बिगड़ गए। कई पुरानी मित्रताएँ एकदम समाप्त हो गईं। हेमांगिनी के लिए उसे कितना बड़ा बलिदान देना पड़ा, लेकिन उसने सब सहन किया। वह उस पर पूरा अधिकार जमा चुकी थी। उसके हृदय तथा मस्तिष्क पर हेमांगिनी का ही प्रभाव था। एक ही विचार उसे सताता, एक ही स्वप्न उसे दिखाई देता। न जाने क्यों उसके हर विचार में हेमांगिनी उपस्थित रहती। चाहे वह परीक्षा के सम्बन्ध में सोचता या मित्रों के बारे में, माता-पिता या सम्बन्धियों के विषय में, हेमांगिनी वहाँ अवश्य होती। एक विचित्र-सी घबराहट उस पर छाई थी। क्या हेमांगिनी उसकी नहीं हो सकती?

और फिर एक दिन—

उसने यही प्रश्न हेमांगिनी से कर दिया। एक संक्षिप्त-से पत्र में हेमांगिनी ने शीघ्र ही उत्तर दिया। पत्र खोलते समय उसके हाथ काँप रहे थे, पैर डगमगा रहे थे। कहीं उसने प्रार्थना ठुकरा न दी हो। नहीं, उसने प्रार्थना ठुकराई नहीं थी, स्वीकृत कर ली थी।

कैलाश की तेज़ चीख ने उसकी विचारधारा को अस्त-व्यस्त कर दिया। बच्चा जागकर उच्च स्वर से रो रहा था।

"क्या इस घर में सब मर गए?" नींद से चौंककर लाल-लाल आँखें दिखाती हुई हेमांगिनी बोली।

"पूरी तरह नहीं मरे, अभी सिसक रहे हैं।" उसने खिड़की के पास खड़े-खड़े उसी तरह बाहर देखते हुए कहा।

"आपको बातें ही बनानी आती हैं। क्या आपमें इतनी भी मनुष्यता नहीं कि रोते हुए बच्चे को चुप करा सकें?"

"कभी थी, अब नहीं है। संगति का प्रभाव है न?" उसने कोमल

भाव से चुटकी ली।

"बस, आपको एक के बाद एक उत्तर देना आता है और कुछ नहीं।"

"कह तो दिया कि बुरी संगति का प्रभाव नष्ट नहीं होता।" उसने सामने दयार के वृक्ष पर दो बन्दरों को लड़ते हुए देखकर कहा।

"किसकी बुरी संगति ? मेरी या तुम्हारी ?" चारपाई पर उठकर बैठते हुए आग की तरह भड़ककर हेमांगिनी बोली।

"बकवास बन्द करो," वह गरदन घुमाकर चिल्लाया। उसकी आँखों से जैसे चिनगारियाँ निकल रही थीं। फिर कहा, "तुमने मेरा जीवन व्यर्थ कर दिया है। तुम्हारी योग्यता और प्रेम के आश्वासन सब दिखावे के थे—पानी की सतह पर उठने वाले बुलबुले।" उसका चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। फिर कहा, "तुमको धन की खोज थी, तुमने केवल मुझसे इसलिए विवाह किया कि शायद मैं आई० सी० एस० हो जाऊँगा और तुम मज़े करोगी। मैंने तुम्हारे लिए कैसे-कैसे बलिदान किये। तुम्हारे प्रेम के कारण माता-पिता की आज्ञा को ठुकराया, उनसे बिगाड़ किया, मगर—" क्रोध की चरम सीमा के कारण उसका मुँह बन्द हो गया। वह क्रोध के कारण हाँप रहा था।

हेमांगिनी की आँखों से सावन बरसने लगा। वह तकिये में मुँह छिपाए सिसकियाँ भर रही थी।

सहसा बाहर से किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। वे दोनों चौंककर जैसे सँभल गए। बाहर से आवाज़ आ रही थी, "भाई हम आये हैं, तिवारीजी।"

"ओहो, मेहता और श्रीमती मेहता आये होंगे। आज इतवार है न ?"

उन दोनों ने जल्दी-जल्दी अपने क्रोध और आँसुओं को रोका। वह दौड़कर दरवाजे पर पहुँचा।

हेमांगिनी ने जल्दी से बाल सँवारकर मुँह धोया। उसके कानों में

ये शब्द जैसे गूँज रहे थे—

"तुम्हारी योग्यता एवं प्रेम के आश्वासन सब दिखावे के थे—पानी की सतह पर उठने वाले बुलबुले।"

उसने सोचा, "अब मेहता और श्रीमती मेहता के सामने हम दोनों हँसी-खुशी के साथ रहने वाले पति-पत्नी का जो अभिनय करेंगे, वह क्या होगा ? यह भी तो दिखावा है। इस समय की बातें क्या होंगी, वही बुलबुले।" वह अनियंत्रित भाव से हँस पड़ी। जीवन की सब बातें बुलबुले ही तो हैं।

जब उसने हँसते हुए कमरे में प्रवेश किया तो श्री मेहता और श्रीमती मेहता के साथ वह भी हँस रहा था, जैसे कह रहा हो—"जीवन की सब बातें बुलबुले ही तो हैं।"

आवाज़ें

दूर से एक आवाज़ उसके कान में पड़ी। वह इन आवाज़ों का अभ्यस्त हो चुका था। उसके कान इनसे परिचित हो चुके थे। कमरे के बाहर निकलकर उन्हें सुनने की उसके मन में कोई उत्सुकता न थी। मेज़ पर पुस्तकें बिखरी हुई थीं। दीवार पर पहाड़ी दृश्य का एक रमणीय चित्र लटक रहा था और क्लाक की टिक-टिक उसे समय का अनुभव करा रही थी। वह अनमना-सा था। उसे आज स्टुडेण्ट कांग्रेस के वार्षिक उत्सव पर पढ़ने के लिए भाषण लिखना था। इस कांग्रेस का सभापतित्व उसकी इच्छा के विरुद्ध उस पर लादा गया था। विद्यार्थियों की इस सभा के नियम और सिद्धान्त केवल राजनीतिक होने के कारण वह इस प्रतिष्ठा को स्वीकार करने से हिचकिचाता था। राजनीति को वह केवल बौद्धिक विनोद समझता था, इसके सिवा कुछ नहीं। क्रियात्मक राजनीति से वह डरता था। वह जानता था कि गेंडे की चमड़ी वाला कठोर मनुष्य ही इस खेल के लिए योग्य सिद्ध हो सकता है। हृदय की दुर्बलता, पेशे का आराम और बदनामी का डर उसे इस मार्ग पर अग्रसर होने से रोकते थे। उसे यह भेद ज्ञात हो चुका था कि राजनीति के भँवर में फँसकर कोई भद्र पुरुष सुख की आकांक्षा नहीं कर सकता। उसकी प्रतिष्ठा सर्वदा अरक्षित रहती है। सर्वसाधारण की दृष्टि सदैव उसके गुप्त रहस्यों पर लगी रहती है, जिनको खोलने में

उन्हें विशेष सुख की प्राप्ति होती है। विद्यार्थियों के राजनीतिक काम तो उसे फूटी आँख न भाते थे। उसने अनुभव किया था कि विद्या से अरुचि, विलास-लोलुपता और नायकत्व की अभिलाषा इनकी राजनीतिक रुचि को उत्तेजित करती है। उनका जोश सामयिक और अस्थायी होता है। उसे उनकी मानसिक उन्नति पर सन्देह था। उसकी दृष्टि में उनकी गम्भीरता कृत्रिम होती है और उनका ज्ञान पल्लवग्राही। उनके विचार जीवन के यथार्थ पर नहीं, प्रत्युत् रोमांस तथा भावुकता पर निर्भर होते हैं। राजनीतिक ज्ञान और व्यावहारिक जीवन में कितना अन्तर होता है! कहाँ तो स्वाधीनता-प्रेम का पवित्र भाव और कहाँ मिथ्या विश्वासों का वृथा बन्धन! कहाँ समानता का नारा और कहाँ भेद-भाव का शोर! एक ओर भ्रातृ-स्नेह के दावे, दूसरी ओर भेदों के दिखावे। सदाचार उनके जीवन को छू तक न गया था और संयम उनकी ज़िन्दगी से बिलकुल गायब था। विद्या और आचरण में छत्तीस का नाता था। उनकी राजनीति एक ही बात पर केन्द्रित थी—हड़ताल—अध्यापक के विरुद्ध, काम के विरुद्ध, परीक्षा के विरुद्ध।

दूर से जयकारों की ध्वनि फिर सुनाई दी।

ये जयकार दैनिक जीवन के अभिन्न अंग बन गए थे। कोलाहल मानव-जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गया था। गलियों और बाजारों में एक ही बात की चर्चा थी। घरों और क्लबों में एक ही बात पर बहस थी। आज कितने मनुष्य तलवार की भेंट हुए और कितने मकान आग की। विस्तृत परिमाण पर हत्याकाण्ड रचे जा रहे थे। मुसलमान प्रसन्न थे कि हिन्दुओं को आर्थिक हानि पहुँच रही है। हिन्दू बगलें बजाते थे कि मुसलमानों की जन-क्षति हो रही है। मनुष्य के हाथों मनुष्य पर दैवी कोप प्रकट हो रहा था और वह इसमें परम सन्तुष्ट था। साम्प्रदायिक युद्ध एक नवीन तथा विचित्र ढंग से लड़ा जा रहा था, जिसमें सिद्धान्त की पाबन्दी पराजय-स्वीकृति के अनुकूल थी। विजय और पराजय का प्रमाण घायलों और मरे हुओं की संख्या पर निर्भर

था। निहत्थों पर आक्रमण करना, स्त्रियों को अपमानित करके उनका अपहरण करना, बच्चों और बूढ़ों को मारना इस युद्ध के विशेष गुण थे। घरों के साथ उनमें रहने वालों को भी आग की भेंट करना प्रशंसनीय माना जाता था। इस युद्ध के सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध के सिद्धान्तों से भिन्न थे। जब कि पहले युद्ध में प्रतिद्वन्द्वी एक-दूसरे को जाने बिना आपस में उलझते थे, इस युद्ध में वर्षों से एक ही पड़ोस में रहने वाले एक-दूसरे पर पिल पड़ते। बहुसंख्यकों पर इस प्रकार आक्रमण करते, जैसे भेड़ियों का एक झुण्ड भेड़ों के एक रेवड़ पर। बहुधा ये लोग शरणागतों के प्रति भ्रातृभाव प्रकट करते और उनकी सरल हृदयता से लाभ उठाकर उनके शरीरों के टुकड़े उड़ा देते। उनके मज़हब के 'शरीफ लोग' दिखावे के तौर पर इन आक्रमणों की निन्दा करते और आक्रमणकारियों के इस पाशविक क्रम को कायरपन कहते, किन्तु वास्तव में इन आततायियों के निष्ठुर पैशाचिक कार्यक्रम पर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते। असंख्य मनुष्यों के हँसते हुए जीवन-दीप एकदम बुझकर रह जाते। भाग्यहीन स्त्रियों की आँखों में इतने भी आँसू न रह पाते, जिन्हें बहाकर वे अपने स्वर्गवासी पतियों और पुत्रों का तर्पण कर सकतीं। किन्तु जल्लादों की तलवारें उन्हें इस कष्ट से छुटकारा देतीं और ईश्वरीय प्रसाद बनकर उनकी आत्माओं को उनके बिछुड़े हुए आत्मीयों से मिलातीं। अनाथों के आँसुओं तथा मासूमों के नालों को भी यही तलवारें थमातीं। वंशों-के-वंश इस संसार से मिट गए, गाँव-के-गाँव उजड़ गए; लेकिन विध्वंस के ये मर्मभेदी दृश्य मनुष्य को उसके विनाशकारी कार्यक्रम पर बधाई दे रहे थे। इस विजय पर उसे अकथनीय आनन्द प्राप्त हो रहा था।

पत्र-पत्रिकाओं में भी इन्हीं घटनाओं को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त होता। प्रातःकाल का एक पत्र अब भी उसकी मेज पर पड़ा था। प्रथम पृष्ठ हत्या और अग्निकाण्ड की घटनाओं से भरा हुआ था। कलकत्ता में बमों की लड़ाई हो रही थी। कानपुर में चाकू चल रहे थे। अमृतसर में

जमकर लड़ाइयाँ हो रही थीं। लाहौर में मकान जलाये जा रहे थे। मानव-मस्तिष्क अपना सन्तुलन खो बैठा था। संसार का इतिहास उसकी आँखों के सामने तैरने लगा। वे युग, जब मनुष्य को ऐसे कष्टों ने आ दबाया था, उसके सामने घूमने लगे। मानव-इतिहास के धुँधले कुहरे से लेकर, जब पाशवता और मानवता में कोई भेद न था, बीसवीं शताब्दी के ऐटम युग तक, जब मानव-मस्तिष्क उन्नति के शिखर पर पहुँच चुका, मानव-जीवन में केवल एक विशेषता थी—मानव के अन्दर कूट-कूटकर भरी हुई उत्पादन की प्रवृत्ति। सभ्यता की उन्नति इसी विनाशकारी प्रवृत्ति की उन्नति थी। मस्तिष्क की उन्नति का अभिप्राय युद्ध के नये तरीकों का आविष्कार था और यह सत्य किसी एक देश अथवा जाति से सम्बन्धित न था। कोई जाति या देश इस सचाई से मुक्त न था। उसे मानव-स्मृति की दुर्बलता पर हँसी आ गई। संसार के देश और राष्ट्र उसके देश की इन घटनाओं को हैरानी से देखते थे, जैसे यह कोई अद्‌भुत बात हो। उसे याद आया कि किस प्रकार एक समय गाड़ी में इसी विषय पर एक फ्रांसीसी महिला से उसकी बहस हो गई थी। बातों-बातों में उसके देश के साम्प्रदायिक वैमनस्य को वह मूर्खता के नाम से सम्बद्ध करने लगी। भारतवर्ष में उसके पन्द्रह वर्ष के निवास ने उसे इस बात का पूर्ण विश्वास दिला दिया था कि फसाद का माद्दा हिन्दुस्तानियों की नस-नस में भरा हुआ है। साम्प्रदायिक झगड़ों का मिटाना अत्यन्त कठिन, बल्कि असम्भव है। और ये सब बातें देश के अन्धकारमय भविष्य की द्योतक हैं। उसे इस विचित्र तर्क पर रोष आ गया था और वह उसके साथ उलझ पड़ा था। भला किस देश में झगड़े नहीं होते? साम्प्रदायिक कलह की आड़ में मानव-रक्त कहाँ नहीं बहा? भारतवर्ष के इतिहास में साम्प्रदायिक झगड़ों के उदाहरण केवल अंग्रेजी राज्य-काल ही में मिलते हैं, जबकि इन गोरे हाकिमों ने अपनी पकड़ सुदृढ़ करने के लिए हिन्दू-मुसलमानों को आपस में लड़ा दिया। अन्यथा इति-हास की अगणित शताब्दियों के समय में धार्मिक सहिष्णुता का जो

प्रमाण भारत ने दिया है, वह किसी अन्य देश में ढूँढने से भी नहीं मिलता। किन्तु मध्यकाल के ईसाइयों के साम्प्रदायिक कलहों की रोंगटे खड़े कर देने वाली कथाएँ अब भी मस्तिष्क में जमी हुई हैं। उसने उस महिला को सेण्ट बार्थोलोम्यो वाले दिन के भीषण हत्याकाण्ड की याद दिलाई, जबकि केवल पैरिस नगर में चौबीस घण्टों के भीतर एक लाख से अधिक स्त्री-पुरुष साम्प्रदायिक कलह में मारे गए। उसमें धर्म के नाम पर भाई ने भाई पर तलवार उठाई, बाप ने बेटे को मौत के घाट उतारा और पति ने पत्नी के रक्त से होली खेली। वहाँ बच्चे, बूढ़े और स्त्री में भेद करना कठिन था। इस पैशाचिक हत्याकाण्ड का उदाहरण संसार-भर के इतिहास में नहीं मिलता। फिर वह महिला यूरोप की उत्तम सभ्यता पर गर्वित थी, जहाँ मानव-मस्तिष्क का सन्तुलन किसी शताब्दी में भी स्थिर नहीं रहा। क्या हुआ, यदि आज यूरोप वाले धर्म के नाम पर तलवार नहीं उठाते। आज राजनीति और अर्थशास्त्र उन्हें रक्तपात के खेल में लिप्त रखने के लिए यथेष्ट है। यदि यूरोप ने संसार को विज्ञान की करामातें दीं तो विज्ञान का दुरुपयोग भी संसार को सबसे पहले यूरोप ही ने सिखाया। विज्ञान को उन्नति का साधन बनाने के स्थान पर उसने ध्वंसकारी बनाया। विज्ञान का सदुपयोग समस्त संसार को स्वर्गवाटिका में परिणत कर सकता था, परन्तु स्वार्थपर यूरोप की सभ्यता ने संसार को रौरव नरक बना दिया है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद यूरोप की सभ्यता की देन हैं और तबाही और बरबादी उसके अनिवार्य परिणाम। महायुद्ध, जो असंख्य देशों और जातियों को अपने चंगुल में फँसाकर विध्वंस के भयंकर दृश्य पैदा करते हैं, इसी सभ्यता के कारण संसार में हुए। इसी सभ्यता के कारण पच्चीस वर्ष के अल्पकाल में संसार को दो भयंकर महायुद्धों का सामना करना पड़ा। इन महायुद्धों ने संसार में अग्निकाण्ड कर दिया। आज बीमारी, बेकारी और दरिद्रता इसी सभ्यता की बपौती बनकर भाग्यहीन विधवाओं, पितृहीन बच्चों और अन्याय-पीड़ित लोगों को घेरे हुए हैं। उसकी बातों

ने जैसे उस महिला के मुँह पर ताला लगा दिया था।

पत्रों में नेताओं के वक्तव्य छपते थे। उन्हें पढ़कर उसके नथुने रोष से फूल उठते। अत्याचारी कहीं के! खून के प्यासे भेड़िये! दुष्ट! उसका मन उन्हें हजारों गालियाँ देता। झगड़ों का उत्तरदायित्व वास्तव में इन दुष्टों पर ही है। इनकी स्वार्थपरता इन्हें अन्धा बना देती है। सर्वसाधारण के अज्ञान को ये सदैव अपने स्वार्थसाधन के निमित्त प्रयोग में लाते हैं। अपना उल्लू सीधा करने के लिए सहस्रों मनुष्यों का बलिदान देने में भी नहीं झिझकते। जब शान्तिमय साधन उनकी स्वार्थपरता के मार्ग में रोड़ा अटकाते हैं तो वे लोगों में घृणा के भावों को भड़काते और साम्प्रदायिक भेदभाव की आग सुलगाते हैं। द्वेषाग्नि प्रचण्ड ज्वाला बनकर भड़क उठती है, जिससे नेताओं की इच्छा-पूर्ति के लिए सर्वसाधारण की शान्ति, उनके शरीर और घर-बार धुआँ बनकर उड़ जाते हैं। इनके लेख तथा भाषण लोगों को उकसाते हैं और अकारण ही वे एक-दूसरे पर झपट पड़ते हैं तथा पल-भर में मनुष्यों की लाशों के ढेर लग जाते हैं। सभ्यता फिर पीछे की ओर पग उठाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन तेजी से अवनति की ओर भागा जा रहा है। इतने विध्वंस और क्षय के पश्चात् भी ये जीवित रहते ह। लोगों को एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काने वाले पूर्णतया सुरक्षित रहते हैं। उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचती। वैर-विरोध की ज्वाला फैलाने वाले प्रतिद्वन्द्वी दलों के नेता पारस्परिक सम्बन्धों को बनाये रखते हैं। इनके निमन्त्रणों तथा मुलाकातों का सिलसिला जारी रहता है। शायद अधिक सफल नेता बनने के लिए अधिक पाशविक वृत्ति की आवश्यकता है। वह हृदय, जिसमें अनुराग न हो, जो स्नेह-भाव से वंचित हो, नेतृत्व के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

धर्म के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ लोग सर्वसाधारण में साम्प्रदायिकता की आग सुलगाते हैं। जिनके निजी जीवन में ईश्वर का कोई स्थान नहीं होता, वे ही उसका नाम लेकर लोगों को उकसाते और अपनी विजय

तथा विरोधी दल की पराजय का कारण प्रकृति की लीला बताते हैं। हत्या और विध्वंस में भी भगवान् को घसीटा जाता है। इस प्रकार के विचार उसे प्रायः परेशान कर देते। वह भगवान् का पुजारी था। अपने इष्टदेव की आराधना के बिना वह दिन का काम आरम्भ न करता था। वह और उसकी पत्नी दोनों समय संध्या करते थे; सुख, शान्ति, धन और स्वास्थ्य की प्रार्थना करते थे। परन्तु बहुधा आशंकाओं का धुआँ उसके मन की गहराइयों से उभरता। अपने आराध्य-देव की शक्ति पर उसे शंका होती। इन विद्रोही विचारों को दबाने का वह प्रत्येक सम्भव प्रयत्न करता, परन्तु किसी-न-किसी छिद्र से बाहर निकलकर वे उसकी परेशानी का कारण बन जाते। असीम शक्ति का स्वामी और संसार का सिरजनहार होकर भी वह विश्व के इस क्षय को क्यों नहीं रोक सकता ? युद्ध, दुर्भिक्ष, महामारी, भूचाल और तूफान किस शक्ति के वश में हैं ? क्या इन आधि-व्याधियों और आपत्तियों पर उसका कोई वश नहीं ? क्या इन आपत्तियों के रोकने के लिए वह अपनी अपार शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता ? वह हैरान था कि किस आधार पर अपने इष्टदेव को सर्वज्ञ माने। यदि विध्वंस का उत्तरदायित्व उस पर आता है तो किस कारण उसकी महत्ता को माना जाय ? यदि मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क उस भगवान् के दिये उपहार हैं तो उनमें पैदा होने वाले विध्वंसकारी विचारों का कौन ज़िम्मेदार है ?

कोलाहल पहले से निकट प्रतीत हुआ।

शिशु ने चीत्कार किया और अधखुली आँखों से ऊषा उसके शरीर पर हाथ फेरने और सहलाने लगी। उसकी सुन्दर अँगूठी की झलक अब भी उसे विवाह की याद दिलाती थी। कितनी कड़वी थी वह याद भी ! माता-पिता के असहयोग से विवाह में आनन्द कहाँ ? उन दोनों ने अपने माता-पिता के परामर्श को ठुकराया था। माता-पिता ने इस विवाह का समर्थन करना अस्वीकार कर दिया था। उसके माता-पिता उसके विवाह के सुन्दर स्वप्न अपने ढंग से देख रहे थे। वे उसे एक धनी कुटुम्ब में

ब्याहना चाहते थे। माँ की आँख सुमित्रा पर थी। सुमित्रा उच्च शिक्षिता न होने पर भी एक धनी पिता की इकलौती पुत्री थी। उसके पिता जानते थे कि सुमित्रा के दहेज से उनका घर-बार भर जायगा। फिर किसी दिन सुमित्रा अपने पिता के घर की अकेली स्वामिनी होगी और उस धन पर उसका अधिकार होगा। कई वर्ष वे इन मधुर सपनों को पालते रहे। मोहल्ले के लोग तथा उनके सम्बन्धी उनसे ईर्ष्या रखते थे। इस विवाह के पश्चात् उनके घर का नक्शा बदल जाना अनिवार्य था। परन्तु उसने जैसे वायु के एक प्रचण्ड झोंके के समान माता-पिता के आशा-दीप को एकाएक बुझा दिया। उसने सुमित्रा के साथ विवाह करने से साफ नाहीं कर दी। उसके माता-पिता ने उसके इन्कार की परवा न की और चुप रहे। कुछ वर्षों के बाद जब सुमित्रा के विवाह की बात पक्की हो गई और तिथि इत्यादि का निश्चय हो गया तो वह आगबबूला हो उठा। क्या विवाह कोई गाय-भैंस का सौदा है, जिसमें उसकी राय का कोई महत्त्व नहीं ? यह तो प्रेम-सम्बन्धी और जीवन का प्रश्न है। भला प्रेम और धन में कैसा मेल ? इन दोनों की कैसी मित्रता ? क्या केवल जन्म देने के नाते ही उसके माता-पिता को उसे बेचने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है ? क्या केवल पालने-पोसने के कारण उन्हें उसकी आकांक्षाओं को पद-दलित करने का पूरा अधिकार है ? जन्म देने के पश्चात् बच्चों को पालना माता-पिता का आवश्यक कर्तव्य होता है। समय आने पर वह भी अपने कर्तव्य को निभाने में त्रुटि न करेगा और माता-पिता की प्रत्येक उचित इच्छा को पूरी करेगा। किन्तु वह अपनी आत्मा पर किसी का शासन पसन्द न कर सकता था। आत्मा की स्वतन्त्रता के लिए वह सब-कुछ करने को उद्यत था। विवाह का प्रश्न उसका निजी मामला था। उसमें वह किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता था। इस मामले में वह ईश्वर के विरोध को भी ठुकरा सकता था। प्रत्येक उचित त्याग करके वह अपने अधिकारों की रक्षा पर तुला हुआ था। कुबेर के धन का लालच भी उसे सुमित्रा के साथ विवाह करने को विवश न

कर सकता था। उसे सुमित्रा से प्रेम न था। उसका उस पर कोई अधिकार न था। उन दोनों ने एक-दूसरे को देखा तक न था। अगणित आपत्तियों को मोल लेकर भी वह ऊषा को छोड़ने के लिए तैयार न था। वह आठ वर्ष से उसके हृदय में निवास कर रही थी, और हृदय एक समय में एक ही व्यक्ति के प्रभुत्व को मान सकता है। उसने ऊषा के साथ विवाह की प्रतिज्ञा की थी। वादा किया था कि वह केवल एक ही विवाह करेगा। इसी कारण प्रतिज्ञा को तोड़कर वह उसके दिल को तोड़ना चाहता था। प्रेम-प्रतिज्ञा को तोड़कर वह अपनी दृष्टि में गिरना न चाहता था। उसके इस आचरण से उसके माता-पिता को कितने घोर अपमान का सामना करना होगा, यह वह भलीभाँति जानता था। ऐसे सम्बन्ध का हाथ से निकल जाना उसके माता-पिता के लिए कितना दुःखदायक था। पर सम्बन्धियों की धमकियाँ उसे विवश न कर सकीं। पिता की झिड़कियाँ उसे डरा न सकीं। माता के आँसू उसे मोम न कर सके। लोगों ने दाँतों-तले उँगली दबा ली। उन्होंने ज़माने की टेढ़ी चाल की शिकायत और नवीन शिक्षा की निन्दा की। वह यह बात सुनकर हँस दिया। पानी में छलाँग मारकर भला कौन नहीं भीगता? अंग्रेजी इतिहास और साहित्य पढ़कर घोर मूढ़ ही प्रभावित हुए बिना रह सकते हैं। कौन कहता है कि अंग्रेज़ी शिक्षा दासता सिखाती है। यह शायद पढ़ने-पढ़ाने वालों का दोष है कि वे समुद्र की अगाध गहराइयों में गोता नहीं लगा सकते; नहीं तो बर्क, मिल, चार्ल्स, ब्रेडला, शॉ तथा हक्सले जैसे लेखकों को पढ़कर किसके हृदय में स्वतन्त्रता का भाव उत्पन्न नहीं होता। फिर स्वतन्त्रता केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता ही तो नहीं। दूषित सामाजिक नीतियों को जड़ से उखाड़ना, कुत्सित रीतियों का उन्मूलन करना और गर्हित व्यवहारों के चिथड़े उड़ाना भी तो स्वतन्त्रता के भिन्न-भिन्न पहलू हैं। अंग्रेज़ी साहित्य में बहुमूल्य मोती भरे पड़े हैं, जिन्हें केवल राजहंस ही चुन सकते हैं, काग नहीं। वह चट्टान की भाँति अपने निर्णय पर डटा हुआ था। वह जानता था कि प्रतिज्ञा-पालन

करने में उसे घोर कष्ट का सामना करना होगा, भयंकर दुःखों को सहना होगा और भयानक मार्गों को लाँघना होगा। मार्ग भयावना होने पर भी उसने पीछे हटने का नाम न लिया, परन्तु उसे इस हठधर्मी का फल भी भोगना पड़ा। उसके माता-पिता विवाह में सम्मिलित नहीं हुए और न उसके सम्बन्धी। केवल उसके दूर के नाते का एक मामा और अपने मित्र सम्मिलित हुए। ऊषा की सौतेली माता ने अपने पति को स्पष्ट रूप से बता दिया था कि वे ऐसे विवाह से कोई सम्बन्ध न रखेंगे, जिसमें जाति-पाँति और गोत्र तक का ध्यान न रखा गया हो। वंश-मर्यादा भला किसे प्रिय नहीं होती? अतः उस ओर से भी किसी ने सहयोग न दिया। विवाह की रीति उसके मामा ने कराई। समय सब रोगों की औषधि है, यह झूठ सिद्ध हुआ। उसके माता-पिता के घाव हरे ही रहे। शिशु का जन्म भी उनके रोष को दूर न कर सका। शिशु का नाम मृणाल था। अपने माता-पिता के प्रेम का केन्द्र मृणाल ही था।

आवाजें और भी बुलन्द हो गईं।

परन्तु यह तो नित्य की बात थी। लोगों को जैसे शोर मचाने की लत पड़ गई थी। नारे लगाना साधारण-सी बात थी। प्रायः लोगों के ऊँचे नारे तथा मर्मभेदी चीखें उन दोनों की नींद उचाट देती थीं। उसने कई बार इन दृश्यों को देखा भी था। रात्रि की निस्तब्धता को चीरता हुआ लोगों का कोलाहल उठता। अन्धकार की गहराइयों को चीरती हुई लाल-लाल आग की लपटें आकाश की ओर लपकतीं, जैसे आकाश ही उनका लक्ष्य हो। वायुमण्डल को चीरते हुए असंख्य विलाप और अनगिनित चीखें दिशाओं में फैल जातीं। लोगों के झुण्ड पानी की बाल्टियाँ सँभाले और घड़े सिरों पर उठाए भागते। आग बुझने का नाम ही न लेती। लपटें दबती ही न थीं। पानी उसके लिए तेल का काम करता। हवा उसे पंखा डुलाती। मस्ती में झूमती हुई वह आग चारों ओर फैल जाती और अपने दामन को फैला देती। जीवों और निर्जीव के प्रति उसकी एक ही नीति होती। रू-रियायत करना उसके सिद्धान्त के विरुद्ध

था। उसके पंजे में पड़कर झोंपड़ियाँ और महल राख हो जाते। लोहे के गार्डर मोम बन जाते। मनुष्यों के शरीर झुलस जाते और बच्चों के शरीर भस्म हो जाते। चीत्कार और विलाप उसको मोम न कर सकते। तब फायर ब्रिगेड आकर उसके रोष को शान्त करते। पुलिस आकर लोगों को उनके अपराध का दण्ड देती। कर्फ्यू तोड़कर बाहर आना सरकार को चुनौती देना था। पुलिस की गोलियाँ इसका उत्तर देतीं। यह प्रतिदिन होता, परन्तु सौभाग्य की बात यह थी कि मोहल्ला और मकान सुरक्षित थे। आज उसे भाषण लिखना था। कमरे से निकलकर अथवा छत पर जाकर इस मर्मभेदी दृश्य को देखने की उसे कोई आकांक्षा न थी।

न जाने कितने लोग इस आग के शिकार हो चुके थे। प्रत्येक मनुष्य को अपनी और अपने परिवार की रक्षा की चिन्ता थी। किसी भी समय मकान में आग लगाई जा सकती थी। कोई मनुष्य या कोई घर सुरक्षित न था। आततायी लोग वेष बदलकर फिरते और रात्रि के अन्धकार में पहरेदारों की नजर बचाकर पेट्रोल छिड़ककर दियसलाई दिखा देते। क्षणभर में लपटें उठकर आकाश से बातें करने लगतीं। मकान के लोगों को बाहर निकलने का अवसर ही न मिलता। लपटें उनके शरीर से खेलतीं और लोगों को उनके अस्थि-पंजर ही हाथ आते। यदि किसी दिन कोई उसके मकान पर भी पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दे? उस अवस्था में वह यों सहज में प्राण नहीं देगा। वह आग की लपटों से लड़ेगा। शायद मोहल्ले के लोग उसे कुछ सहायता दें। परन्तु रात को असमय आग लगने पर, कर्फ्यू के घण्टों में, उस आग पर विजय प्राप्त करना सहज काम नहीं। यदि वह आग से लड़ता रहे तो भी लपटें उसे अवश्य हड़प कर जायँगी। उसके बाद ऊषा और मृणाल की बारी आएगी और निर्दयी आग उन्हें नहीं छोड़ेगी। अगले दिन लोग आकर राख को कुरेदेंगे, जहाँ उन तीनों के ढाँचे उनके हाथ लगेंगे। परन्तु यदि उसका अपना और मृणाल का शरीर झुलस जाय और ऊषा बच निकले,

तो ? ऐसी अवस्था में लोग उस पर भी तरस खाकर उसे अस्पताल पहुँचाएँगे, उसकी मरहमपट्टी कराने और उसकी जान बचाने के लिए। परन्तु यह और भी बुरा होगा। उसका अपना और मृणाल का जीवन-दीप बुझ जाने के बाद ऊषा का जीवन मृत्यु से कहीं अधिक बुरा होगा। दुःख और आपत्ति के अतिरिक्त उसमें रखा ही क्या होगा ? जीवन का आनन्द मिट जाने के उपरान्त वह जीवन दुःख की एक लम्बी अँधेरी रात बनकर रह जायगा। उसमें सुख और शान्ति का लेश भी नहीं रहेगा।

उसे जान पड़ा, जैसे अस्पताल में डाक्टर ऊषा को ठीक करने में लगे हों—मृत्यु के मुँह से बचाकर उसे जीवन प्रदान करने के लिए। परन्तु क्रूरता की भी तो एक सीमा होती है। उसकी बीमारी का इलाज केवल मृत्यु है, जिसे वह किसी भी मूल्य पर लेने को तैयार है। वह ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह उसे दुःख से छुड़ाये। वह याचना करती है कि ईश्वर उसे इस कष्ट से छुड़ाए, परन्तु ईश्वर ध्यान ही नहीं देता। प्रार्थना प्रभावहीन रहती है। वह नर्सों की विनती करती है। मृत्यु के मुँह में पहुँचाने के लिए उनके पास एक नहीं, अनेक दवाएँ होंगी। दवा पाकर वह कितनी कृतज्ञ होगी, उसकी आत्मा उन्हें असीस देगी। परन्तु वे मुस्करा देती हैं। मिस ईसार उसे सान्त्वना देती। उसका हृदय टूक-टूक हो जाता। अस्पताल के विशाल जगत् में वह किसी सच्चे महानुभाव की खोज में थक जाती है। सहसा उसकी दृष्टि अपनी सास व ससुर पर पड़ती है, जो उसकी खाट के पास बैठे हैं। उन्हें देखकर वह काँप उठती है। क्या उसकी प्रार्थना का यही फल है ? परमात्मा, तू उसे उठा क्यों नहीं लेता ? उसकी प्रार्थना हाहाकार बनकर आकाश की ओर जाती है। किन्तु ईश्वर के पास इतना अवकाश नहीं कि इधर ध्यान दे और उसके पास फालतू देवदूत भी तो नहीं हैं। वह सास के भयानक चेहरे की ओर डरते-डरते ताकती है। उसकी प्रचण्ड आँखों की ओर देखकर उसके पाँव काँपने लगते हैं। उसकी आँखों की ज्वाला विषाक्त तीर बनकर उसके हृदय को चीर रही

है। वह उनके प्रहार से बच जाती, यदि पृथ्वी फटकर उसे अपनी गोद में भर लेती। उन आँखों से हजारों गालियाँ बरस रही थीं। सास की दृष्टि में वह एक सुन्दर डायन थी, जो उसके बच्चों को खा गई। वह एक चुड़ैल है, जिसने उसके पोते को भी नहीं छोड़ा। जिस लड़के को उसने लाखों कष्ट सहकर पाला था, वह एक सुन्दर नागिन के प्रेम-पाश में फँसकर पराया हो गया। उसने डोरे डालकर सगे-सगों का सम्बन्ध तुड़वा दिया था। वह एक कुलटा थी, जिसने वंश के जगमगाते दीपक को सदा के लिए बुझा दिया था।

"क्या टुम इसकी मा है ?" एक नर्स बुढ़िया को सम्बोधित कर रही थी।

"नहीं।"

"और कौन है ?"

"अपने मरे हुए पुत्र की माँ।"

ऊषा के लिए यह चोट असहनीय है। बुढ़िया उससे कोई सम्बन्ध जताना नहीं चाहती। वह अपने मरे हुए पुत्र की माँ है, उसकी जीवित पत्नी की सास नहीं। नर्स कुछ न समझकर एक ओर चल देती है। परन्तु ऊषा की छाती जैसे एक बोझ तले दबी जा रही है। सारा वार्ड जैसे उसे काट खाने को दौड़ता है। उसका ससुर चुप बैठा धरती की ओर देख रहा है। इस घोर आपत्ति ने उसकी बोलने की शक्ति छीन ली है, उसके आँसुओं की पूँजी समाप्त हो चुकी है। भूख और प्यास से असहयोग करके वह गुमसुम बैठा रहता है। कपड़े बदलने तक का उसे ध्यान नहीं रहता। उसकी दाढ़ी बढ़ी रहती है, आँखें पथराई-सी रहती हैं। ढीला कोट, मैली पगड़ी, गन्दा पाजामा और फटे हुए जूते पहने वह खोया-खोया फिरता रहता है। एक घटना ने जैसे जीवन-धारा को कितना बदल दिया है ! परन्तु घटना क्या है ? विवाह या मृत्यु ? सास-ससुर के लिए विवाह, ऊषा के लिए मृत्यु। उनकी दृष्टि में वह एक अपराधिनी है, जिसने अपने सौन्दर्य-पाश में उनके पुत्र को एक जादूगरनी के

समान फँसाया। परन्तु उसका दोष और भी स्पष्ट है, वह स्वयं क्यों न उन दोनों के संग झुलस गई ? सबकी दृष्टि में वह एक काँटा बनकर खटक रही है।

अस्पताल के जीवन से जैसे वह ऊब गई है, डाक्टरों पर से जैसे उसका विश्वास उठ गया है और फिर उसे नीरोग होने की आवश्यकता ही क्या है ? जीवन में रखा ही क्या है ? वह सास-ससुर के संग घर लौट जाती है। परन्तु क्यों ? वे किस प्रकार इस बात पर सहमत हो गये ? लोकलाज भी तो एक प्रबल कारण है। दूसरे वह बेचारी जायगी भी कहाँ ? कोई और सहारा भी नहीं। इस विशाल संसार में किसी को अपना कहकर नहीं पुकार सकती। लेकिन अब घर आकर वह अपनी भूल को अनुभव करती है। वह क्यों न अस्पताल में पड़ी रही ? वहाँ उसे कितना आराम था ? समय पर दवा और खाना मिल जाता था। बाहरी संसार की उसे कानों-कान खबर न होती। लोग उसके विषय में क्या सोचते हैं, क्या बातें करते हैं, इस बात की उसे तनिक भी परवा न थी। लेकिन अब वह जैसे एकदम शत्रुओं के बीच ढकेल दी गई हो, जैसे एक हिरनी शिकारियों के चंगुल में आ पड़ी हो। शिकार को सिसका-सिसकाकर मारना इन शिकारियों का विशेष गुण है। उनके शस्त्र भी अनोखे हैं। कभी वे ज़बान के शस्त्र का प्रयोग करते हैं और कभी चुप्पी का, कभी आँखों का और कभी इशारों का। सास उससे बोलती तक नहीं, जैसे उसे देखते ही उसकी ज़बान पर ताला लग जाता है। घर का कोई काम करने की उसे आज्ञा नहीं, न किसी खाने-पीने के पदार्थ को छूने की। वह रसोई-घर के पास नहीं फटक सकती। उसके खाने के बरतन भी अलग हैं। वह एक अछूत है, जिसके केवल हाथ लगने से कोई भी चीज खराब हो सकती है। मोहल्ले की स्त्रियाँ उसकी छाया तक से भागती हैं, उसे देखकर अपने बच्चों को छिपा लेती हैं। डायन का साथ भी कितना भयंकर होता है ! मन्दिर जाना उसके लिए निषिद्ध है। एक पापिन की उपस्थिति से ठाकुर भी कुपित हो सकते हैं।

घर उसे काटने को दौड़ता है। वहाँ रहना उसकी शक्ति के बाहर है। मोहल्ले में कोई सहानभूति रखने वाला नहीं। वह किसी से अपने हृदय का दुःख नहीं कह सकती। न उसकी कोई सहेली है न कोई सगा। किसी में इतना धैर्य नहीं कि उसकी बात सुन सके। सब जैसे काम में तल्लीन हों। उसकी आँखों से आँसुओं की बहुमूल्य निधि भी समाप्त हो जाती है। यह सब उसके लिए असह्य है। उसकी मनो-वेदना धैर्य की सीमाओं को पार करती दीख पड़ती है। एक अदृश्य शक्ति उसको अभिभूत करने का प्रयास कर रही है। उसे कठिन कशमकश का सामना करना पड़ता है परन्तु पराजय के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता। दैवी-शक्ति उसे घर छोड़ने को विवश करती है। मध्याह्न समय तड़ाके की धूप में सास उसे जाते देखती है, किन्तु कुछ बोलती नहीं। मोहल्लेवालियाँ उसे बाहर निकलते देखती हैं किन्तु ज़बान तक नहीं हिलातीं। कोई भी उसे मना नहीं करता, जैसे अदृश्य शक्ति बाह्य शक्ति से मिलकर षड्यन्त्र कर रही हो। गाँव के बाहर जाकर वह खेतों में पहुँचती है, लेकिन उसके पाँव थमते नहीं। सूर्यदेव पूरी तेजी से चमक रहे हैं। उनका प्रचण्ड ताप पृथ्वी को झुलसा रहा है। मनुष्य, पशु और पक्षी इस धूप में बाहर आने का साहस नहीं कर सकते। केवल एक आत्मा इस जलती आग में घूम रही है—उदास, विक्षुब्ध और पीड़ित। कड़ी धूप और अतिशय ताप उसे छाया और ठण्डक ढूँढ़ने के लिए बेचैन करते हैं। सहसा दूर वृक्षों का एक झुण्ड उसे अपनी ओर बुलाता है। वह इस निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं कर सकती। वहाँ वृक्षों से घिरा हुआ एक कूप है। पानी की ठण्डक और शीतलता तथा उसकी आत्मवेदना और मानसिक जलन में कितना अन्तर है! पानी की नीरव गहराइयों और उसके नीरस जीवन में कितना फ़र्क है, जैसे यह नीरवता उसे मुक्ति-मार्ग का अस्वीकरणीय निमन्त्रण दे रही हो।

जैसे उसी क्षण भयङ्कर चीत्कारों ने उसे जगा दिया। बाहर से कर्कश आवाज़ें उसके कान में पड़ने लगीं, "त्रिवेदी साहब, आपके मकान

में आग लग गई है।" वह व्याकुल होकर उठा। उसके हाथ-पाँव फूल गए। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। वह हैरान था कि इस आग का उसे पता क्योंकर न चल सका और किस प्रकार कर्फ्यू के समय, सशस्त्र पुलिस की परवा न करते हुए, किसी ने उसके मकान में आग लगा दी। किन्तु अब सोचने का समय न था। वह शीघ्रता से उठा। लोगों के कोलाहल ने ऊषा और मृणाल को भी जगा दिया था। वास्तविकता का अनुभव करके जैसे उस बेचारी के प्राण सूख गए। सबसे पहले उसे मृणाल की चिन्ता हुई। उसे गोद में ले वह बाहर की ओर भागा। मोहल्ले में कोलाहल मचा था। लोग आग पर पानी डाल रहे थे, लेकिन इससे आग की लपटें और भी ऊँची होतीं। चिनगारियाँ अन्धाधुन्ध चारों ओर दौड़तीं। प्रचंड वायु उनकी सहायक बन रही थी। उनके चंगुल में पड़कर दीवारें गिर रही थीं, छतें भस्म हो रही थीं और गार्डर मोम बन रहे थे। घर का सामान जल रहा था। ज्वालाओं से लड़ता हुआ, मृणाल को गोद में सँभाले, वह बाहर की ओर भागा। उसे बाहर छोड़, वह ऊषा को लेने फिर भीतर घुस गया, परन्तु मोहल्ले के नवयुवकों ने मकान के भीतर घुसकर ऊषा को निकाल लिया था। उसे इस बात की कोई खबर न रही। ज्वालाओं से उलझता हुआ वह भीतर पहुँचा। ऊषा न थी। वह काँप उठा। अग्नि की ज्वालाएँ अब उसके शरीर से खेल रही थीं।

अस्पताल घायलों से भरा था। गगनभेदी चीत्कार हृदय हिला रहे थे। हृदय-विदारक चीखें दीवारों को हिला रही थीं। बड़ा डाक्टर घायलों की चारपाई के पास से गुजर रहा था। एक मूर्च्छित घायल के पास जब वह पहुँचा तो दूसरे डाक्टर ने उसे बतलाया—

"और जनाब, इस बेचारी का पति आग का शिकार हो गया और बच्चा घावों के कारण चल बसा। अभी विवाह हुए देर नहीं हुई। शिशु केवल दो मास का था।"